आपकी चर्या

—सुदर्शन सिंह 'चक्र'

आपकी चर्या

लेखक :

सुदर्शन सिंह 'चक्र'

प्रकाशक

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान सेवा-संस्थान, मथुरा

प्रकाशक :

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान सेवा-संस्थान,

मथुरा

प्रकाशन तिथि :

कार्तिक पूर्णिमा, सम्वत् २०४३ वि०

प्रथम संस्करण : १६ नवम्बर १९८६ ई०

द्वितीय संस्करण : २ अगस्त २०१० ई० .... २००० प्रतियां

श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी, सम्वत् २०६७ वि०

मूल्य : **35.00**

पैंतीस रुपये मात्र

वर्ण-संयोजक

तरुण कम्प्यूटर ग्राफिक्स

गोपाल मार्केट, स्वामी घाट, मथुरा

फोन नं. ९४१२६-२७४८४

मुद्रक :

मयूर प्रेस

जे. बी. नगर (पंचवटी) मसानी, मथुरा

विषय-सूची



उपक्रम

मैं उपदेशक नहीं हूँ । मुझे न उपदेश करनेका व्यसन है और न मैं अपनेको इसका अधिकारी मानता ।

इतनेपर भी मैंने यह जो 'आपकी चर्या' का प्रारम्भ किया– इसका प्रयोजन है । मुझे एक व्यसन तो है । व्यसन शब्दके दो अर्थ हैं, १. नशा और २. हावी । जो अपनेमें किसीको सहज व्यस्त रखे, वह व्यसन । इस अर्थमें मुझे अपने कन्हाईको सोचते रहने और उसीकी चर्चा करने, सुनने-लिखनेका व्यसन है ।

आप जानते हैं कि जिसे कोई व्यसन होता है वह औरोंको भी समानधर्मी बना लेना चाहता है । आप भी कन्हाईको सोचें, उसीकी चर्चा करें, इसीलिए यह आपकी चर्याकी बात करने चला हूँ ।

आप यदि निर्गुण-निराकार या सगुण निराकारमें निष्ठा रखते हैं तो मुझे क्षमा करें । यह चर्या आपके लिए नहीं है । फिर जो किसी ईश्वरीय सत्ताको ही स्वीकार नहीं करते, उनके लिए कोई चर्या-चर्चित करनेका साहस मैं कैसे करूँगा ।

आप धर्मात्मा हैं, धर्मनिष्ठ हैं तो भी मुझे क्षमा करें । मैं न धर्मात्मा हूँ, न धर्मशास्त्र, पूर्व मीमांसाका विद्वान । ऐसे धर्मिष्टोंकी दिनचर्याती उनकी श्रौत शाखाके आह्निक सूत्रमें है । उसे वहाँ देखना चाहिये । जिनकी श्रौत शाखाका आह्निक सूत्र उपलब्ध नहीं है, उनके लिए पारस्कर गृह्य सूत्र है ।

आप सगुण साकारमें विश्वास रखते हैं, तो भी सभी सगुणोपासकोंके लिए यह पूरी चर्या नहीं है । अवश्य ही इसके अनेक अंश– अधिकांश सभी सगुण साकारमें प्रीति रखनेवालोंके लिए हैं; किन्तु यह चर्या ऐसे सम्पूर्ण वर्गको ध्यानमें रखकर लिखी नहीं जा रही है ।

यह चर्या उनके लिए है जो श्रीव्रजराजनन्द बाबाके लड़ैते लालको अपना मानते हैं अथवा उस चिर-चपलको अपना बनाना चाहते हैं ।

लेकिन ऐसे लोगोंमें भी जो मधुर-भावको अपनाये हैं अथवा अपनाना चाहते हैं, उन महानुभावोंके लिए यह चर्या पूर्णरूपसे अपनी नहीं बन सकती। उनको तो मैं प्रणाम ही करता हूँ। भक्तिमें जो परमोच्च श्रेणीके भावके अधिकारी हो चुके, अथवा अपनेको उसका अधिकारी मानते हैं, उनकी चर्या-निर्देशका साहस मैं नहीं कर सकता।

इसी प्रकार भक्ति करते हुए भी जिनके आराध्य भगवान् नारायण, भगवान् नीलकण्ठ, भगवती महाशक्ति अथवा मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराघवेन्द्र हैं, उनके लिए भी चर्या-निर्देश करनेकी क्षमता मुझमें नहीं है।

आराधककी चर्या अपने आराध्यके शील, स्वभावके अनुरूप होनी चाहिये और आप जानते हैं कि श्रीव्रजेन्द्र-नन्दन अतिशय चपल है। गोपकुमार भला मर्यादा क्या जाने। इसमें न गम्भीरता है और न इसे स्थिर बैठने आता।

अतएव यह चर्या श्रीकृष्णचन्द्रके केवल दास्य, सख्य और वात्सल्य भावापन्न अथवा इनमें-से कोई भाव अपनानेको उत्सुक भावुकोंके लिए है।

वैसे श्रीकृष्णमें दास्य भावका परिपाक मथुरा या द्वारिकामें भले हो, गोकुलमें तो नन्द-सदनके ही नहीं, सामान्य गोपगृहोंके भी सेवकोंको यह ताऊ या चाचा कहता है और सेविकाओंको ताई या चाची। बहुत वृद्ध हों तो बाबा या दादी कहेगा। उनकी गोदमें चाहे जब बैठ लेगा या कन्धेपर चढ़ जायगा। अतः इसके प्रति सेवक-सेविकाओंका वात्सल्य ही उमड़ता है।

धर्म-शास्त्रके मर्मज्ञ तो विशेष रूपसे क्षमा करें। धर्म-शास्त्र सम्मत शौचाचार भक्तिमें केवल भगवान् नारायणकी उपासनामें अनिवार्य होता है।

भगवान् सदाशिवके गण कोई शौचाचार जानते ही नहीं। उन महाऔघड़के आराधकोंका एक वर्ग ही अघोरी है। महाशक्तिकी सेविकावर्गमें जब डाकिनी-शाकिनीका भी नाम आता है तो उनके शौचाचारकी आप कोई कल्पना कर सकेंगे ?

श्रीरघुनाथ मर्यादा पुरुषोत्तम तो हैं और स्वयं किसी मर्यादावादीसे अधिक कठोर शौचाचार निभाते हैं, किन्तु यदि सेवकोंसे भी वे ऐसी अपेक्षा करते होते तो निषादराजको मित्र बनाते या बानर-कपियोंको सेवककी श्रेणी दे पाते ? आपको आशा है कि वानरोंको कभी उन्होंने कुछ थोड़ा शौचाचर

निभानेको कहा होगा ?

बात रही कन्हाईकी तो यह ठहरा बालक और वह भी गोपबालक। अतः इसे पता ही नहीं कि शौचाचार होता क्या है। यह तो इसने मथुरासे महर्षि सान्दीपनिके आश्रममें जानेपर सीखा होगा, किन्तु मथुराके श्रीवसुदेव-नन्दनसे तो हमें प्रयोजन नहीं है। अतः नन्दनन्दनकी प्रीति सम्पादन-चर्यामें शौचाचार-विधानका कोई वर्णन मैं कर नहीं रहा हूँ। धर्माचार्यगण मुझे इसके लिए क्षमा करें।

शौचाचारकी चर्चा न करनेपर भी बहुत कुछ है– ऐसा बहुत कुछ है जिसे अपनाये बिना मैया यशोदाका लाल अपना नहीं बनता अथवा इसे अपना बनाने चलो तो स्वयं जीवनचर्या उस प्रकारकी हो जाती है। आपकी चर्यामें इसी चर्याकी चर्चा करनेका मन है।

मैंने सदा मन ही किया है। अपनोंका मन रख लेना कन्हाईका स्वभाव है। अतः यह सहायता तो करेगा ही।

यहीं एक बात स्पष्ट कर देनी है– 'आप अपनी ठसक रखना चाहेंगे तो कन्हाईसे आपकी कभी पटेगी ही नहीं।'

गरब गोविन्दहिं भावत नाहीं।

श्रीहरि गर्वहारी हैं। अतः अपनी ठसक छोड़कर आप कन्हाईके अनुकूल बननेका प्रयत्न करेंगे तो इसमें बाधा देनेवाले स्वभाव-दोषको दूर करनेमें यह सहज उदार आपकी सहायता करेगा। मनुष्य अपने अनेक बद्धमूल स्वभावोंसे विवश होता है; किन्तु जब उनमें किसीको हेय समझ लेता है, उसे त्यागना चाहता है, उससे दुःखी होता है तो उसका अन्तर्यामी उसे सहायता देकर धीरे-धीरे उस बाधक स्वभावसे उसे छुड़ा देता है।

इसी प्रकार जो बात स्वभावमें नहीं है और आवश्यक लगती है, उसे लानेकी इच्छा तथा प्रयत्न करनेपर 'उर-प्रेरक' उसमें सफलता देता है। उसने 'योगक्षेम वहाम्यहम्' की प्रतिज्ञा कर रखी है।

अतः अब आइये 'आपकी चर्या' की ही चर्चा करें।

–सुदर्शनसिंह 'चक्र'

१. आपका जागरण

आपके वास्तविक जागरणकी चर्चा यहाँ नहीं कर रहा हूँ; क्योंकि वास्तविक जागरण तो लक्ष्य है । वह तो तब प्राप्त होगा जब कन्हाई जगावे । गोस्वामी तुलसीदासजीने कहा—

मोह निसा सब सोव निहारा ।
देखहिं सपन अनेक प्रकारा ॥
जानिअ तबहिं जीव जग जागा ।
जब सब विषय विलास विरागा ॥

इस जागरणकी बात यहाँ नहीं । केवल नींदसे साधारण दैनिक जागरणकी बात ।

आप प्रातः काल कब जागते हैं, यह चर्चा भी नहीं । वैसे ब्राह्म-मुहूर्तमें जागना उत्तम है । सूर्योदयसे पहिले उठ जानेकी सब धर्म-शास्त्र और सत्पुरुष प्रेरणा देते हैं ।

जहाँ तक कन्हाईकी बात है, यह गोप-कुमार है । जो गायोंकी नींद न सोये और गायोंसे पहिले न जाग सके वह गो-पालन कैसे करेगा । श्रीकृष्ण नित्य-गोपाल, अतः शैशवसे इसका स्वभाव है बहुत सवेरे जग जानेका । जब बछड़े भी चराने नहीं जाता था, तब भी मैयाको शान्तिसे दधि-मन्थन नहीं करने देता था । तब भी मैयाके उठनेके थोड़ी देर पीछे ही जाग जाता था ।

लेकिन यहाँ मैं यह नहीं कह रहा कि आप कब जागो, आप कैसे जागो, मुख्य बात यह है और यह बात गृहस्थ-विरक्त स्त्री-पुरुष सबके लिए है ।

आप भगवन्नाम लेते, भगवत-स्मरण करते जागते हो तो बहुत उत्तम बात है; किन्तु निद्रा टूटनेपर ऐसे मत उठो जैसे बाहर सोते समय अचानक वर्षा आनेपर या भूकम्प आनेपर उठते हो । हड़बड़ीमें मत उठो । नेत्र खोलने और कुछ बोलने— भगवन्नाम बोलनेसे भी क्षण भर पहिले यह अनुभव कर

लेनेका प्रयत्न कर लो– देख लो, टटोलकर या अनुमानसे कि कहीं कन्हाई आपकी शैय्यापर आपके पास ही तो नहीं सोया है ।

'मेरा ऐसा सौभाग्य कहाँ !' इस प्रकार कहकर आप इस सौभाग्यके आनेको ही धक्का देकर दूर हटाते हैं ।

आप क्या सोचते हैं कि नन्दनन्दन किसी सुयोग अथवा साधनसे प्राप्त होता है ? आप अमुक प्रकारके होलोगे, तभी यह आपको मिल सकेगा ? तब तो हो चुका इसका मिलना । यह बड़े-बड़े योगियों, तपस्वियों, धर्मात्माओंके सहस्त्रों जन्मोंके योग, तप, ध्यान-ज्ञान या धर्माचरणसे भी साक्षात् मिलना तो दूर, मनमें भी आधे क्षणको नहीं आता ।

यमैवेष वृणते तेन लभ्य :

श्रुति भगवती कहती हैं कि जिसे यह स्वयं वरण करे, उसीको मिलता है और वरण किसे करेगा ? इसका सीधा उत्तर है कि जो इसकी, इसके मिलनकी प्रतीक्षा करेगा । जिसके प्राण इसके मिलनको व्याकुल होंगे ।

आशा और प्रतीक्षा– केवल दो साधन हैं इसको पानेके । कैसी सुदृढ़ आशा, कैसी प्रतीक्षा ? आपने न पढ़ा हो तो 'भगवान् वासुदेव' में कुब्जा सैरन्ध्री की प्रतीक्षा पढ़ लें । 'रामचरित' का शबरी प्रसंग भी पढ़ सकते हैं ।

दिन-पर-दिन, मास-पर-मास बीतते जाते हैं और आशा ऐसी अदम्य कि हारना जानती ही नहीं । 'कल नहीं आये तो आज आते ही होंगे ।'

इस आशाका आधार है और बहुत दृढ़ आधार है । नन्हें कन्हाईका स्वभाव ही इसका सबसे बड़ा आधार है । इस मैया यशोदाके लालको अकेले सोनेका अभ्यास नहीं है । इतनेपर भी हेकड़ी इसमें बहुत है । सायं काल हेकड़ीमें आकर दाऊदादा तथा भद्रकी स्पर्धामें बाबाके समीप अपनी अलग शैय्या लगवाता है और उसपर सो जाता है । कहनेपर भी बाबाकी शैय्यापर या बड़े भाईके पास नहीं सोता । मैयाके अंकमें सोकर अपनेको छोटा कैसे मानले । अब जब दाऊ और भद्र दोनों गोष्ठमें बाबाके समीप सोने लगे हैं, यह भी बाहर उनके समीप ही शैय्या लगवाता है ।

सोता तो है अपनी ही शैय्यापर; किन्तु कब तक ? जब तक नींद

न आ जाय । नींद आयी और जब खुलेगी तो आधी नींदमें, ऊँघमें किसीको अपनी हेकड़ीका स्मरण रह सकता है ?

कन्हाई नींदमें भी इधर-उधर हाथसे टटोलता है कि उसके पास मैया, बाबा या दादा है या नहीं । कोई शैय्यापर न मिले तो ऊँघमें ही उठकर चल देगा । ऊँघमें इसे क्या पता हो सकता है कि किधर जा रहा है ।

'मैया !' सदा यही धुन नहीं चढ़ती; किन्तु नींदके झोंकमें यह धुन चढ़े तो भवनमें मैयाके समीप जानेके स्थानमें किसी भी गोपके भवनमें घुस जा सकता है और जिसकी भी शैय्या मिल जाय, उसीपर उससे चिपककर सो जा सकता है ।

उस समय टटोलनेपर कोई पुरुष मिला लगे तो मान लेगा कि बाबा हैं । कभी 'दादा' कहकर किसी गोपकुमारके पास जा लेटेगा ।

'बाबा, दाऊ, भद्रकी शैय्याएँ तो समीप ही रहती हैं । इसे कहीं एक ओर सोने दिया जा सकता है । इसकी शैय्या दाऊ और भद्रके मध्यमें लगती है । बाबा अपनी शैय्या बालकोंकी शैय्याके सिरहानेकी ओर लगाते हैं । अतः कन्हाई नींदमें उठकर अधिक तो इनमेंसे ही किसीकी शैय्यापर जाकर उनसे सटकर सोता है; किन्तु यह कभी पैरोंकी ओरसे शैय्यासे नहीं उतरेगा, ऐसा कोई नियम तो है नहीं ।

श्याम तो अनेक बार किसी सेवक या सेविकाके समीप ही नहीं, किसी गाय, वृषभ या बछड़ेके ही समीप उससे सटा सोया मिलता है । बाबा रातमें अनेक बार उठकर अपने लालको देख लेते हैं । वह अपनी शैय्यापर तो कदाचित ही होता है । बाबा, दाऊ या भद्रकी शैय्यापर न हो तो रातमें ही बाबा इसे ढूँढ़ते हैं और सोते ही अंकमें उठा लाकर अपने समीप लिटा लेते हैं ।

आवश्यक नहीं है कि कन्हाई जिसकी शैय्यापर है, उससे लिपटकर ही सोये । यह तो दूसरी ओर मुख किये सर्वथा अलिप्त, कुछ दूर भी सोया हो सकता है । निद्रामें इसे लग जाय कि कोई समीप है, बस प्रगाढ़ निद्राके लिए इसे इतना ही चाहिये ।

ऐसा केवल द्वापरमें ही होता रहा हो, ऐसा नहीं है । कन्हाई कालकी क्रौड़ीमें नहीं आता । नन्दनन्दन नित्य है और नित्य है इसका स्वभाव । निर्वाध

चलती हैं इसकी क्रीड़ा ।

होता तो ऐसा आज भी है; किन्तु जिस किसी महाभागके साथ ऐसा कुछ होता है, वे इसे प्रकट नहीं करना चाहते । प्रकट करनेका शास्त्र निषेध भी करता है । प्रकट करनेसे उनका लाभ तो होता नहीं, हानि सम्भव है । लोक प्रतिष्ठासे साधकको बचना ही चाहिये । सबसे बड़ी बात यह कि कन्हाई बहुत संकोची, लज्जालु है । कोई उसका मिलन यदि सार्वजनिक बनावेगा तो उसके समीप आनेमें इसे संकोच लगेगा ।

घटनाकी चर्चा इसलिए की जाती है कि आपकी आस्था बढ़े, दृढ़ हो, आप स्वयं वैसा लाभ पानेको तत्पर हों; किन्तु प्रायः लोग इस पूछताछमें प्रवृत्त होते हैं कि घटना किसके साथ हुई ? कब हुई ? कहाँ हुई ? ऐसी जिज्ञासाका समाधान करना न उचित है, न शक्य ?

इस पुस्तकमें मैं कुछ सुनी-जानी घटनाओंकी चर्चा कर रहा हूँ; किन्तु आप उनके सम्बन्धमें ऐसे खोज-बीनके प्रश्न करोगे तो आपको निराश होना पड़ेगा । मैं आपको उत्तर नहीं दूँगा । जिन्होंने भी मुझे कोई अपना अनुभव सुनाया है, इस विश्वासपर ही सुनाया है कि मैं उसे अपने तक ही रखूँगा ।

मैं कहानीकार हूँ, अतः अनेक बार इस पूछताछसे बचनेके लिए वास्तविक घटनाको कहानीका नाम दे देता हूँ; किन्तु किसी कल्पनाको कभी वास्तविकता नहीं बतलाया करता ।

एक गृहस्थ हैं । एक दिन पति-पत्नी रात्रिमें एक साथ सोये ही थे कि पत्नीने कहा– "पहिले इनको सो जानेको कहिये । ये ऐसे सिरहाने खड़े रहेंगे तो किसीसे सोया जायेगा ?"

पति बोले– "तू तनिक सरकती क्यों नहीं है कि यह व्रजराजकुमार भी हमारी शैय्यापर सो जाय ।"

पत्नीने झल्लाकर कहा– "इनकी ओर पीठ करके सोना हो तो तुम सरककर इन्हें अपने पास बुलाओ, मुझसे तो ऐसा किया नहीं जा पावेगा ।"

पति सहज भावसे बोले– "तू तनिक उधर सरक । इसकी ओर पीठ किससे की जायेगी; किन्तु यह तो नन्हा है, भोला है । हम दोनोंके बीचमें सो रहेगा ।"

कन्हाई सोया नहीं । वह इतनेमें हँसकर भाग गया और वह भाग जाय तो उसे ढूँढ़कर कोई पा सकेगा ?

आवश्यक तो नहीं है कि इस प्रकार वह आपके जागते हुए ही आपके पास आ जाय । आपके सोते समय भी वह कभी चुपचाप आकर आपके समीप सो जा सकता है ? अतः आपकी नींद टूटे तो हड़बड़ीमें सहसा उठ बैठने या कुछ बोलनेसे पहिले एक बार अनुमान तो कर लें कि यह आपके पास सोया नहीं है ? उसके पश्चात् आप नाम-स्मरण या जो प्रातः स्मरण करके प्रतिदिन उठते हैं, वह करेंगे तो इस आधे क्षणके सतर्क अनुमानसे आपकी कोई धर्म-हानि नहीं होनेवाली है ।

मान लेते हैं और अधिक सम्भावना भी यही है कि आपकी यह प्रतीक्षा कभी सफल न हो; क्योंकि कन्हाई अधिकांश बाबा, दाऊदादा या भद्रकी शैय्यापर ही सोतेमें जाकर सो जाता है । भवनमें मैयाके समीप भी कदाचित् ही जाता है । लेकिन ऐसी प्रतीक्षासे आपका दिन मंगलमय बन जायेगा और आपका अन्तःकरण श्यामके अधिक समीप पहुँचेगा ।

योगके मार्गमें दो वृत्तियोंके सन्धिकालमें मनके संयमका बहुत महत्व माना गया है । इससे समाधि-सिद्धि होती है, वृत्तियोंकी सन्धिकी अवस्था ब्रह्मावस्था है । इसीलिए हिन्दू धर्ममें सन्ध्याको नित्य कर्म अर्थात् अनिवार्य आवश्यक कर्म माना गया है ।

निद्रा और जागरणका सन्धिकाल अर्थात् जब नींद टूट गयी हो और आप पूर्णतः जागे न हों, यह आपके मनकी मुख्य सन्धिकालकी स्थिति है ।

प्रयत्न करें तो इस अवस्थाको दो-चार क्षण ठहरनेवाली बना लेना बहुत कठिन नहीं है । इस अवस्थाका ठीक सदुपयोग करेंगे तो आपका चित्त शीघ्र निर्मल होगा ।

ठीक सदुपयोग क्या ? जीवनका ही ठीक सदुपयोग भगवत्-स्मरण है । अतः निद्रा-जागरणकी सन्धिके इस अल्प समयको श्रीकृष्ण-स्मरणमें लगानेका अभ्यास कीजिये । इस नगण्यसे समयमें मनमें श्रीकृष्णके सान्निध्यकी स्मृतिको जगाइये ।

एक दिनमें ही यह नहीं हो जायगा; किन्तु आप चाहेंगे और जाग

जानेपर खिन्न होंगे कि उनींदे क्षणोंमें मनमें क्यों नहीं आया कि कन्हाई आपके समीप हो सकता है तो धीरे-धीरे यह सम्भावना आपके मनमें अवश्य आकार ग्रहण करने लगेगी ।

नन्हा लगभग नौ वर्षका अतिशय सुकुमार साँवला परम सुन्दर कन्हाई । कोई शृंगार नहीं । घनी, घुँघराली, काली, अत्यन्त कोमल, स्निग्ध अलकें, जैसे काले रेशमके लच्छे हों, बिखरी, अस्त-व्यस्त हैं । कानोंपर, भालपर छा गयी हैं और चमकते कुण्डल उनमें-से तनिक-तनिक झाँकते-से लगते हैं ।

भालपर तिलकका किञ्चित् चिन्ह शेष है । सघन धनुषाकार पतली भौहोंके नीचे नेत्रोंकी बड़ी-बड़ी पलकें बन्द हैं । अलसीके पुष्पके समान सुकुमार उठी, कुछ लम्बी नासिकाके नीचे नन्हा-सा मुख ऐसा है, जैसे छोटी-सी लाल रेखामात्र हो । एक तो मुख छिद्र वैसे ही तनिक-सा है, दूसरे अत्यन्त पतले सुकुमार अधर बन्द हैं । अतः केवल अरुण रेखा जैसा है ।

ठुड्डी गोल, छोटी है और कण्ठ शंखके ऊपरवाले भागके समान है । उसमें रेखाएँ हैं । कपोल चमकते, अरुणाभ हैं । उनपर भी जहाँ-तहाँ अलकें घिर आयी हैं ।

कण्ठमें जैसे अरुणोदयका प्रकाश ही घनीभूत होकर कौस्तुभके रूपमें स्थिर हो गया है । कन्धे तथा वक्ष अपेक्षाकृत विशाल हैं । वक्षपर टेढ़ी पड़ी छोटे मोतियोंकी माला है एवं वाम भागमें पीले रोमोंकी एक भ्रमरी है । इसीको मुनिगण श्रीवत्स कहते हैं ।

त्रिवली युक्त पतला उदर श्वास लेनेसे तनिक उठ-बैठ रहा है । उसमें नन्ही गहरी नाभिकी शोभा अद्भुत है । उस नाभिसे नीचे पूरे पेटपर एक गाढ़ी, काली रेखा है । यह नीला चिन्ह तब पड़ा, जब मैयाने कन्हाईको ऊखलमें बाँध दिया । सुकुमार कन्हाईकी पतली कटिमें रत्न-किण्किणीसे लगभग सटी यह रेखा स्थायी ही हो गयी । इसीसे यह दामोदर हुआ है ।

कछनी ढीली हो रही है । साँचेमें ढलेके समान जाँघें, घुटने, पिण्डलियाँ और चरण । आपने नवजात शिशु देखे हैं । उनके पैरोंसे कहीं अधिक सुकुमार, बीरबहूटी जैसे अरुण चरणोंकी अंगुलियोंके नखोंसे ज्योत्स्ना झर रही है । मैयाके पहिनाये रत्न-नूपूर हैं चरणोंमें ।

अपेक्षाकृत लम्बी, कुछ मोटी ही भुजाओंमें पतले अंगद हैं । कलाइयोंमें कंकण हैं । अरुण-पद्मके समान अधखुले कर शिथिल पड़े हैं ।

रुकिये– यह सब शोभा कन्हाई आपके समीप भी हो तो एक दिनमें नहीं देखी जा सकती । अनेक दिनोंमें तो क्या अनेक जन्मोंमें भी नहीं देखी जा सकती । यह श्रीव्रजराज-नन्दन है ही ऐसा कि इसके जिस अंगपर दृष्टि पड़ी, वहीं स्थिर हो गयी । सदा-सदाको वहींकी हो गयी । अब दूसरे दिन तो क्या दूसरे जन्ममें भी दृष्टि वहाँसे हटने वाली नहीं है । इसलिए कोई कभी कन्हाईको पूर्णतः देख नहीं पाता । यह सबके लिए सदा सम्मुख रहकर भी नित्य अपिरिचत और साथ ही इतना सुपरिचित कि इसकी अपेक्षा अपना शरीर भी अधिक परिचित नहीं ।

मत चेष्टा कीजिये अभी नेत्र खोलकर इस नन्दलालकी एक झलक देख लेनेकी । यह इतना चञ्चल है कि आप पलक खोलेंगे उससे पहिले ही भाग जायेगा । इसे अदृश्य होते देर कहाँ लगनेवाली है । अतः इसके सामीप्यका केवल अनुमान कीजिये दो-चार क्षण ।

अनुमानका एक आधार तो है; किन्तु वह भी न होने जैसा ही है । क्योंकि जब निद्रा एवं तन्द्राकी अवस्था होती है तो मनुष्यकी कोई कोई इन्द्रिय सावधान नहीं होती । वह अपने विषयका स्पष्ट ग्रहण नहीं करती और जब वह स्पष्ट विषय ग्रहण करने जितनी जागृत, चेतन होती है, यह चपल भाग चुका होता है ।

यदि तुलसीके इत्रमें नीलकमलका इत्र इस अनुपातमें मिलाया जाय कि नीलकमलके इत्रमें-से तुलसीका सौरभ भी आवे और फिर उसमें थोड़ा-थोड़ा खस, अगुरु, मलय-चन्दन, कपूर, केशर, कस्तूरीके इत्र मिला दिये जायें तो जो इन सबकी सम्मिलित सुगन्धि बनेगी कुछ-कुछ वैसी अगगन्ध कन्हाईकी है ।

इसका अर्थ यह नहीं है कि आप नेत्र बन्द किये रहें तो भी पूरे जागकर नासिकासे गन्ध लेनेका प्रयत्न करें । पूरे जागनेपर तो यह गन्ध उपलब्ध होनेसे रही । अपनी तन्द्राके क्षणमें इस गन्धके आने और आकर चौंका देनेकी प्रतीक्षा करें आधे क्षण । इस गन्धके आनेकी आशाके साथ आपका जागरण हुआ करे, यह प्रयत्न करें ।



२. आपका रूप

आपको पता होगा कि छोटे बालक तीन प्रकारके स्वभाववाले होते हैं– १. किसीकी भी गोदमें– जानेमें नहीं हिचकते । जो गोदमें लेनेको हाथ बढ़ता है, उसीके पास चले जाते हैं । २. किसी भी अपरिचितके पास नहीं जाते । उसकी ओर देखते हैं, छिपकर भी देखते हैं; किन्तु कोई अपरिचित कितना भी पुचकारे, उसकी गोदमें नहीं जाना चाहते । वह कुछ दे तो उसके हाथसे लेते नहीं । ३. कुछ बालक तो अपरिचितके बुलाने– पुचकारनेपर रोने ही लगते हैं । वे बहुत शीघ्र डर जाते हैं ।

कन्हाई प्रथम कोटिका शिशु है । डरना तो जैसे यह जानता ही नहीं और न शंकित होता या संकोच करता । जो बुलावे उसीकी गोदमें चला जाता है । शीघ्र उससे घुलमिल जाता है ।

आपने यदि शिशुओंके स्वभावपर ध्यान दिया होगा तो जानते होंगे कि बालक किसीके काले या गोरे होने, सुन्दर या कुरूप होनेपर तनिक भी ध्यान नहीं दिया करता ।

बड़े-बूढ़ोंकी यह बात ठीक है कि अबोध बालक भगवानका स्वरूप होता है । वह केवल स्नेह पहिचानता है । किसीके बाहरी रूप-रंगपर ध्यान नहीं देता । फिर कन्हाई तो अत्यन्त अबोध और भोला है ।

श्रीव्रज-नवयुवराज यदि सुन्दर ढूँढ़ने लगे तो उससे अधिक तो दूर, उसके समान या उससे कुछ उन्नीस भी सुन्दर व्रजसे बाहर उसे कहीं कोई देवताओंमें भी मिलेगा ? यह तो व्रज ही है कि जो उसका अभिन्न स्वरूप है । व्रजमें बालिकाओंकी बात छोड़ भी दें तो उसके सखाओंमें ही इसका छोटा चचेरा भाई तोक इसकी दूसरी मूर्ति ही है ।

कन्हाई किसीके बाहरी रूप-रंगपर ध्यान देता होता तो असुरोंको सखा बनाता ? इसने तो प्रलम्ब या व्योमासुरको सखा स्वीकार करनेमें दो क्षण भी विलम्ब नहीं किया था । मारे तो वे गये अपनी दुष्टतासे ।

आप काले हैं या गोरे, मोटे हैं या पतले, ठिगने हैं या लम्बे, इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता । इनमें-से सब प्रकारके गोव व्रजमें हैं । कन्हाईके सखाओंमें सब प्रकारके बालक हैं ।

काने-अन्धे, कुबड़े-लँगड़े, बड़े दाँत या मोटे ओष्ठवाले, अत्यन्त कुरूप कोई हो तो भी कन्हाईको अन्तर नहीं पड़ता । अतः आप अपने नैसर्गिक रूपके कारण किसी हीनत्वकी भावनाको मत अपनाओ ।

"तू अपनी दाढ़ी मुझे लगा दे !" यह नटखट बड़े गोपोंके अंकमें बैठकर उनकी दाढ़ीमें अंगुलियाँ ही नहीं नचाता, अपनी नन्हीं ठुड्डीपर हाथ फेरता वहाँ दाढ़ी लगानेको अनेक बार मचलता भी है ।

'तुझे क्या हो गया है ?' किसीके चेचकके चिन्होंपर अपनी किसलय कोमल पतली अंगुली घुमाते हुए पूछ सकता है– "तू वनमें सो गया था ? तेरे मुखपर दीमक लग गयी थी ?"

आपके वस्त्र बहुत निर्मल नहीं हैं तो क्या हो गया । गोपकुमारको तो धूलि-कीचमें खेलनेका अभ्यास है और गोबरसे सने गोप-गोपियोंके मध्य यह रहता ही है । इसी प्रकार बहुत सजे-धजे लोगोंसे भी भड़कता नहीं है । इसे स्वयं बहुत सजे रहनेका व्यसन है । नटनागर कहा ही इसलिए जाता है कि ऐसा सजा रहता है, मानो रंगमंचपर जानेको प्रस्तुत कोई अभिनेता हो ।

"चाचा ! तुम इस थैलेमें कैसे घुस लेते हो ?" एक गोपके कञ्चुक (कुर्ते) को देखकर इसने उठाया और उससे पूछने लगा । अब आज किसीका पायजामा या पतलून देखकर यही तो कहेगा कि 'तुम दो-दो सटे थैलोंमें पैर डालकर चलते कैसे हो ?'

कन्हाई क्या करता है, यह बात भिन्न है; किन्तु इसका यह अर्थ तो नहीं है कि आप सब शिष्ट मर्यादाओंको तोड़ते रहें और आशा करें कि आपका अन्तःकरण शुद्ध हो जायेगा । चित्त शुद्ध हुए बिना उसमें श्रीकृष्ण-प्रेमका उदय कैसे होगा ? कन्हाई तो बिना प्रेमके मिला नहीं करता ।

भारतीय सभ्यता-शिष्टता पाश्चात्य रहन-सहनसे बहुत भिन्न है । यहाँ मैं किसी रहन-सहनकी स्तुति-निन्दा नहीं कर रहा हूँ, किन्तु कुछ बातें जान

लेना आपके लिए भी आवश्यक है । आप उनका पालन करेंगे या नहीं, यह तो आपके सोचनेकी बात है । आपकी चर्याकी इस चर्चामें ऐसी बातें प्रसंगानुसार आती रहेंगी ।

दक्षिण भारतके मन्दिरोंमें पुरुषोंको सिले वस्त्र पहिनकर नहीं जाने दिया जाता था । अब जिन मन्दिरोंका प्रबन्ध-नियन्त्रण सरकारने ले लिया है, वहाँ इस नियममें शिथिलता आ गयी है ।

पूजा-पाठके लिए, मन्दिरमें जानेके लिए सिले वस्त्र वर्जित हैं । सरलतासे आप समझ सकते हैं कि कोट, कमीज, कुर्ते, गंजी आदि कई दिनके पहिने हों तो पसीनेके लगनेसे अशुद्ध होते हैं । वे नवीन हों या उसी दिनके धुले हों तभी शुद्ध हो सकते हैं ।

पतलून पहिननेवाले तो खड़े होकर लघुशंका करनेको वाध्य हैं ही, पाजामा पहिननेवाले भी प्रायः ऐसा ही करते हैं । ऐसी दशामें पतलून या पाजामेपर लघुशंकाके छींटे पड़ते हैं और पैर वस्त्रसे ढँके होनेसे पता नहीं लगता । मूत्रके छीटोंसे अशुद्ध वस्त्र पहिने ही मन्दिरोंमें जाना कितना उचित है, यह आप स्वयं सोच देखें ।

पूजा-पाठमें या मन्दिरमें बैठना पड़े तो पतलून वालोंको कठिनाई होगी ही । फलतः खड़े-खड़े ही दर्शन करके वे लौटनेके पक्षमें होते हैं । कथा-कीर्तन-सत्संगमें भी उन्हें असुविधा होती है, यदि कुर्सीपर बैठनेका प्रबन्ध वहाँ न किया गया हो ।

आजकल फैशनके नामपर बाल बिखेरे रहने अथवा अटपटे ढंगसे रखनेकी प्रथा चल रही है । अभी अनेक देशोंके समान भारतमें लाल, हरे, पीले केश रंगनेकी प्रथा नहीं चली; किन्तु कभी भी चल सकती है ।

आपके मनपर आपके वेशका प्रभाव पड़ता है, आप तिलक लगाते हैं; कण्ठी बाँधते या तुलसी-रुद्राक्ष आदिकी माला पहिनते हैं तो आपके मनका कुछ तो झुकाव भजन-पूजनकी ओर होता ही है ।

इसी प्रकार जब आप उग्र या भयानक वेश बनाते हैं तो आपके मनमें शान्ति, सौम्यता रहेगी अथवा उग्रता आवेगी ?

आप अमुक प्रकारका वेश बनावें, यह मेरा आग्रह नहीं है; किन्तु यदि

आप चाहते हैं कि आपका चित्त शान्त-सौम्य बना रहे तो अपना वेश उसके अनुकूल रखना चाहिए ।

आपको कन्हाईसे परिचय, हेल-मेल बढ़ाना है तो इतना तो ध्यान रखना ही होगा कि यह गोपाल बालक है । आपका वेश डरावना होगा, भयानक होगा अथवा रूखा होगा तो यह डरे भले नहीं; किन्तु आकर्षित भी नहीं होगा । यह आपकी ओरसे उदासीन हो जाये, ऐसा आप चाहते हैं ?

'वह तो भुतनी जैसी है ?' रूखे उड़ते केश देखकर यह नटखट कह दे तो इसे दोष कैसे दिया जा सकता है ।

'आजकल ऋषि-मुनि या नारदजी किसीको नहीं मिलते ।' एक सज्जनने एक बार मुझसे कहा– 'पहिले तो कंस जैसोंके पास भी आ जाते थे ।'

'पहिले कंस जैसे भी सबेरे उठते ही दन्त-धावन, मुख धोना, स्नान कर लेना करते थे ।' मैंने कहा– 'वे उठते ही चाय नहीं घुटकते थे और उनके वस्त्र तो स्वच्छ पवित्र होते ही थे । ऋषि-मुनियोंको अपवित्र वस्त्रोंसे सहज अरुचि होती है और आजकल तो आप जैसे भगतजी भी मूत्रके छीटोंसे अपवित्र पतलून ही पहिने रहते हैं ।'

जो बात वस्त्रोंके सम्बन्धमें है, वही आभूषणों एवं दूसरे शृंगारके सम्बन्धमें भी समझनी चाहिये । वैसे आभूषण तो स्वतः ही घट गये हैं ।

जैसे अपनेको भयानक या अस्त-व्यस्त दिखलाना उचित नहीं है, वैसे ही अधिक साज-श्रृंगार भी मनमें कामुकता जगाता है ।

कन्हाई आपके वेशसे रीझनेवाला नहीं है । अतः वेश तो शान्त-सौम्य, सुसभ्य ही उत्तम है; किन्तु सुसभ्य वेश देश-कालके अनुरूप होना चाहिये । भारतमें पाश्चात्य या अरब-वेश विदेशकी नकल ही कही जायेगी ।

वेशके सम्बन्धमें महिलाओंसे अवश्य एक बात– आपके वस्त्र; आपका वेश ऐसा तो नहीं ही होना चाहिये जो दूसरे देखने वालोंको उत्तेजित करे या लोगोंको आपकी ओर विशेष आकृष्ट करे । भारतीय नारी-समाज इस विषयमें भटक गया है । पाश्चात्य नकलको फैशन बनानेकी धुनमें भूल ही गया है कि पाश्चात्य नारी अपनेको अत्याधिक कामुका (सैक्सी) दिखलानेका प्रयत्न करती है । उसे अपने शारीरिक आकर्षणसे ही पुरुषको आकृष्ट किये

रहना पड़ता है । यह प्रवृत्ति भारतमें पहिले केवल गणिकाओंमें थी । भारतीय नारीका वेश उसकी शालीनता, सौम्यताका सूचक होना चाहिये ।

आज लड़कियों और महिलाओंमें जो अंग-प्रदर्शनकी प्रवृत्ति और युवकोंके वेश, वस्त्रादिमें जो छिछोरापन बढ़ता जा रहा है, उसके सम्बन्धमें कुछ न कहना ही अच्छा । क्योंकि भोगकी बढ़ती प्रवृत्ति असंयम, औधत्य तो मानवताको तीव्रगतिसे पतनकी ओर ले ही जा रहा है । अतः संसारमें आसुरी-वृत्ति बढ़ रही है ।

आपको अपनेसे ही एक प्रश्न करना चाहिये– 'कन्हाईके निकट होना है अथवा सांसारिक भोग-लोलुप लोगोंमें प्रतिष्ठा-प्रशंसा प्राप्त करनी है ।'

सृष्टिके प्रारम्भसे दो संस्कृतियाँ चल रही हैं । एक दैव-संस्कृति, दूसरी आसुरी-संस्कृति । इनमें कभी एकका उत्थान, प्रसार होता है, कभी दूसरीका । कलिमें दूसरीका अभ्युत्थान हो रहा है ।

भारतीय संस्कृति भले इस समय आसुरी-संस्कृतिके द्वारा बहुत अधिक दबा ली गयी हो; किन्तु मूलतः यह दैवी संस्कृति है ।

दोनों संस्कृतियोंकी स्पष्ट पहिचान है । दैवी संस्कृतिकी मूल प्रवृत्ति मनुष्यको अन्तर्मुख करना है । आसुरी-संस्कृतिकी मूल प्रवृत्ति बहिर्मुखी है । अतः इसमें बाह्य-सांसारिक प्रवृत्ति-विस्तार एवं लौकिक उन्नतिकी प्रधानता है । स्पष्ट है कि इसका चाकचिक्य आपात रमणीय एवं लौकिक आकर्षक है ।

आज जिस भौतिक विज्ञानको मनुष्यकी महती उन्नति माना गया, उसने पूरे विश्वको लगभग विनाशके कगारपर लाकर खड़ा कर दिया है ।

देव– परमात्मदेव आपके हृदयमें हैं । आप उस अन्तर्यामीके निकट नहीं जाना चाहते तो कन्हाईसे दूर नहीं हो रहे हैं ?

यह संसार भी परमात्मा ही है । 'विस्वरूप रघुवंस मनि' यह बात सम्पूर्ण सत्य है; किन्तु परमात्मा हृदयमें तो अन्तर्यामी बनकर अमृत तत्त्व बाँटता बैठा है और बाहर उसके कालरूपका यह सब विस्तार है । बाहर जो कुछ भी है– वस्तु, व्यक्ति, यहाँ तक कि आपका शरीर भी, यह सब कालका ग्रास है या नहीं ? इसकी आसक्ति ही तो जन्म-मृत्युके चक्रमें डालती है । यही आसक्ति काल-चक्र है ।

उपदेशकी बात नहीं, बात कन्हाई की । इसी नटखटने क्या कहा नहीं है—

'कालोऽस्मि लोकक्षयकृत् प्रवृद्धः ।'

—गीता ११-३२

मुझे स्मरण है कि बचपनमें एक बूढ़े बाबाने बड़े स्नेहसे मुझसे कहा था— "बेटा ! कभी अकेले रातमें सुनसानमें जाना पड़े तो कोई सुन्दर स्त्री अचानक मिल जाय और कहीं किसी ओर चलनेको कहे तो उसके साथ मत चल पड़ना । वह चुड़ैल है । तुझे ले जाकर कहीं मार देगी । या कोई प्रकाश दीखे तो उसकी ओर भी मत जाना । वह प्रेत है । ऐसे समय नेत्र बन्द करके जल्दी-जल्दी भगवान्‌का नाम जप करना ।"

आज स्मरण आती है उन बूढ़े बाबाकी बात । हम सब इस मोहनिशामें भवाटवीमें भटक गये हैं । यह माया-पिशाचिनी प्रलुब्ध करके अपनी ओर आकृष्ट कर रही है । यह भौतिक उन्नतिका प्रकाश प्रेत-उल्मुक है । इनकी ओर जाकर क्या मिलनेवाला है ? केवल एकके बाद एक जन्म-मृत्यु ।

बाबा नन्दका लड़का नटखट है और खिलाड़ी है । उसे भूलकर खेलमें लगो तो यह दूर खड़ा देखता रहता है । यह तो उन्हें बचाने दौड़ता है जो इसके हैं, इसके भरोसे हैं और इसका मुख देखते अघासुरके मुखमें भी यह कहते घुस जाते हैं—

'अयं तथा चेत् बकवत् विनंक्ष्यति ।'

'यह भी गुफा न होकर असुर अजगर हुआ तो बकासुरके समान मारा जायेगा ।'

आप इस नन्दलालके हैं तो आपका रूप इसको प्रिय लगे, ऐसा होना चाहिये या नहीं ?

मैं केवल फैशनका विरोध नहीं कर रहा हूँ । वृन्दावनमें एक टाटधारी बाबा मिले । मैंने उनसे कहा— "बाबा, यदि आपको त्याग-तपस्या ही प्रिय है तो चित्रकूट क्यों नहीं चले जाते । गंगोत्तरी भी उत्तम स्थान है और बदरीनाथ तो नर-नारायणकी तपस्थली है ही ।"

"तुम कहना क्या चाहते हो ?" बाबाजी तनिक चौंके ।

"कन्हाई चपल है और भोला है ।" मैंने कहा– "आप त्यागी महात्मा हो, कभी आपके चरणस्पर्श करने लगे या आपके अंकमें आ बैठे तो आपके इन विवाई फटे चरणोंको छूकर या आपके इस टाटके स्पर्शसे उस सुकुमारको कितना कष्ट होगा ?"

बाबाके नेत्रोंसे टपाटप अश्रु गिरने लगे । उनकी हिचकी बँध गयी । बहुत दिन वे वृन्दावन रहे; किन्तु उन्हें मैंने नीले रंगका सनीलका लम्बा पैरके टखने तक लटकता झूल जैसा कुर्ता ही पहिने देखा ।

'लोग क्या कहेंगे ?' यह भावुक तो देखते नहीं । उस साधुका वह कुर्ता देखकर लोग पता नहीं क्या सोचते होंगे; किन्तु जो कन्हाईको चाहेगा, उसे अपने सोचनेका ढंग तो बदलना ही होगा । वह अपने सुख, सम्मानके लिए कुछ करता नहीं । वह सोचता है– 'कन्हाईको कैसा लगेगा ?'

आप कैसे रहें, कैसा वेश बनावें, यह मैं नहीं बतला रहा हूँ । मैं केवल यह कह रहा हूँ कि आप अपने रूपके सम्बन्धमें सोच लें– 'कन्हाईको कैसा लगेगा ?'

आप सफाचट रह सकते हैं यह सोचकर कि यह सुकुमार आपके कपोलपर अपने कोमल कर रखे तो इसे कष्ट न हो ।

आप खूब सघन दाढ़ी रख सकते हैं कि नन्दतनय अपनी नन्ही पतली अंगुलियाँ उसमें नचाकर प्रसन्न होगा ।

आपका रूप कन्हाईके अनुकूल रहे, ध्यान देनेकी तो केवल इतनी बात है ।



३. आपका स्वरूप

आप वह नहीं हो जैसे आप दिखलायी पड़ते हैं । दिखलायी तो अनेक हत्यारे, चोर, उचक्के तथा बहुत बुरे लोग भी बहुत सभ्य, विनम्र, सत्पुरुष पड़ सकते हैं । मनुष्य अपने चेहरेपर अनेक मुखौटे लगाये हो सकता है; किन्तु वह स्वयं क्या है, अनेक बार वह भी अपने ही लगाये मुखौटोंको अपना स्वरूप मानने लगता है । लेकिन कन्हाई इन मुखौटोंको नहीं देखता । सच तो यह है कि उसके सम्मुख मुखौटोंकी माया टिकती ही नहीं ।

आपका रूप तो बाहरी है । वह दूसरोंको दिखानेके लिए है और दूसरे उसे देखते हैं । उसकी भी एक महत्ता है; किन्तु वह रूप लौकिक है, अतः उसकी महत्ता भी लौकिक है । आपका स्वरूप तो वह है जो आपके अन्तःकरणका स्वरूप है ।

जानबूझकर मैं यहाँ ब्रह्मज्ञानियोंके स्वरूपकी बात नहीं कर रहा हूँ । उनकी दृष्टिसे भेद ही भ्रम है । वे तो एक ही स्वरूप मानते हैं जो नित्य निर्विकार, अद्वितीय, निरञ्जन है । वह तो कन्हाई स्वयं है ।

आपका स्वरूप वह, जो आप एकान्तमें होते हो । आप जो पाना चाहते हो, जैसे बनना चाहते हो, जैसा आपका लक्ष्य है, उसके अनुसार आपका स्वरूप बनता है ।

धर्म आपके स्वरूपका श्रृंगार है । जैसे– तैल, क्रीम, पाउडर आदि आपके बाह्य रूपको सजाते हैं, वैसे ही धर्म आपके अन्तःकरणको सज्जित करता है; किन्तु प्रीति आत्मा है आपकी । आप वैसे हो जैसे विषयमें आपकी प्रीति है और कन्हाई प्रीतिको– भक्तिको देखता है ।

आप जानते हो कि कोई और कितनी भी शृंगार सामग्री मुर्देको सुन्दर भले दिखा दे, किसीके लिए आकर्षक नहीं बना सकती । इस प्रकार प्रीति–भक्ति हीन धर्माचरण तो शव-सज्जा मात्र है ।

छोटे बालकमें भगवदीयत्व अधिक प्रकाशित रहता है और बालकके सम्मुख किसीको भी आडम्बर करनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती; क्योंकि बालक

किसीके रूप-रंग, साज-सज्जापर कम ही ध्यान देता है; किन्तु प्रायः बालक व्यक्तिके स्नेहको पहिचानते हैं । वे हार्दिक स्नेहसे शीघ्र प्रभावित होते हैं ।

कन्हाई बालक ही तो है । अतः यह भी आपका स्वरूप झट पहिचान लेता है । वैसे पूतना इसके पास बहुत बन-ठनकर आयी थी । गोपियों तथा गोपोंने तो उसे साक्षात् सिन्धु-सुता समझ लिया था । उसने बड़े वात्सल्यके दिखावेके साथ नन्द-नन्दनको अंकमें उठाया था ।

कन्हाई उसके दिखावेमें कहाँ आया ? यह तो दूधके साथ उसके प्राण ही पीने लगा । अवश्य पूतनाको सद्गति मिली । आप किसी भी भावसे अग्निको उठावेंगे तो शीतलता मिलेगी ? श्रीकृष्ण हैं ही सच्चिदानन्दघन । अतः किसी भावसे इसका सम्पर्क होनेपर सद्गति तो मिलेगी ही; किन्तु सावधान ! यह आडम्बरका, दम्भका, दिखावेका प्राण पी लिया करता है ।

कन्हाईको चाहिये अन्तरकी प्रीति; क्योंकि यह प्रीति ही आपका वास्तविक स्वरूप है । यह संसारके पदार्थ, पद-प्रतिष्ठा, परिस्थिति-व्यक्तिमें लगी है तो विकृत है, खण्डितांगा है । इसने अनेक आश्रय बनाये है, अतः कन्हाईको आकर्षित करनेमें असमर्था है ।

यह प्रीति— भक्ति एकनिष्ठा, अनन्या कैसे हो— अवश्य यह चिन्तनीय है; क्योंकि सरलतासे ऐसा होता नहीं है ।

प्रीति संसारोन्मुख है तो आपका स्वरूप मलिन है, मायोपलिप्त है । इसे शुद्ध, स्वच्छ करना आवश्यक है । जैसे रूपका परिष्कार किया जाता है, स्वरूपके भी परिष्कारका पूरा प्रयत्न किया ही जाना चाहिये ।

रूप तो कुरूप भी चल सकता है; क्योंकि नाशवान शरीरके साथ रूपको नष्ट हो जाना है । अधिकांश तो शरीर नष्ट होनेसे बहुत पहिले ही रोग एवं वार्धक्य रूपको नष्ट कर देते हैं; किन्तु स्वरूपतो आपका है, जन्मान्तरमें भी बना रहने वाला है । अतः उसका परिष्कार परमावश्यक है और यह मनुष्य ही कर सकता है । सृष्टिमें कर्मयोनि केवल एक है और वह है मनुष्य योनि ।

गाय, गधे या पक्षीको अपने कर्मका फल क्यों नहीं मिलता ? इसलिए कि वे भोगयोनिके प्राणी हैं । लेकिन आप इस भ्रममें मत रहें कि आप कर्मयोनिके प्राणी हैं तो भोगोंकी प्राप्तिके लिए भी स्वतन्त्र हैं । भोगके सम्बन्धमें आप

भी परतन्त्र ही हैं और तब उन भोगोंकी प्राप्तिके लिए जो आपको मिलने ही वाले हैं, आवश्यक चेष्टामें आप स्वतन्त्र होंगे ?

जैसे अपवाद रूप जटायु आदि कुछ पशु-पक्षी भी कर्मयोनिसे ही मुक्त हो गये, वैसे अपवाद रूप ही कोई विशिष्ठ व्यक्ति विशेष तप-अनुष्ठानादिसे प्रारब्ध परिवर्तन करनेमें समर्थ हो सकता है । यह सामान्य नियम नहीं है कि आप इच्छा करके प्रारब्धमें परिवर्तन कर लेंगे ।

आपके कर्म-स्वातन्त्र्यका अर्थात् कर्मयोनिके प्राणी होनेका अर्थ है कि आप अपने स्वरूपका परिष्कार कर सकते हैं । यह स्वतन्त्रता अन्य किसी प्राणीको प्राप्त नहीं है ।

आपके अन्तःकरणमें जो काम-क्रोध, लोभ-मोह, राग-द्वेष, आसक्ति आदि है, वह आपके स्वरूपपर लगा मैल है, स्वरूपकी विकृति है और सत्य, अहिंसा आदि धर्म स्वरूपके श्रृंगार हैं ।

शरीरके सम्बन्धमें भी दो बातें होती हैं– मलापहरण और गुणाधान । आप साबुन आदि लगाकर देहका मैल दूर करते हो और चन्दन, पुष्प, तेल, पाउडरसे शरीरको सजाते हो ऐसे ही तप, तितीक्षा, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य पालन आदि नियमोंके द्वारा, परोपकार, सेवासे स्वरूपका मल दूर करते हो । विकृतिको मिटाते हो ।

स्वरूपमें गुणाधान होता है भक्ति या योगसे । ज्ञानसे न मलापहरण होता, न गुणाधान । ज्ञान तो प्रकाश स्वरूप है । ज्ञानका काम वस्तु स्वरूपको ठीक-ठीक दिखला देना है । प्रकाश किसी कमरेको न स्वच्छ करता और न सजाता । इसीलिए ज्ञानका अधिकारी ही साधन-चतुष्टय सम्पन्न व्यक्ति माना गया है ।

योगका आरम्भ जो आसन-प्राणायाम और ध्यानसे मानते हैं, उनकी समझपर दया ही की जानी चाहिये । योग अष्टांग है और उसके पहिले दो अंग यम और नियम उनकी नींव हैं । इनको त्याग कर योग तो बिना नींवके वायुमें भवन-बनानेके प्रयत्न जैसा है ।

भक्ति ही एक मात्र साधन है, जो सार्वभौम है । जिसे सब प्रकारके लोग सब अवस्थामें सब समय प्रारम्भ कर सकते हैं । भक्ति मलापहरण और

गुणाधान दोनों कर सकती है । सीधे शब्दोंमें कहें तो आप अपने स्वरूपके परिष्कारके लिए कन्हाईसे परिचय कीजिये । इस नन्दनन्दनका स्मरण प्रारम्भ कीजिये ।

आप पूछ सकते हैं कि धर्म और भक्ति तो स्वरूपके परिष्कारक हो गये तो स्वरूप क्या है ?

आप एक बात भूलते हैं यह प्रश्न करते समय कि तत्त्व सब अनिर्वचनीय होते हैं । आप तत्त्व हैं, कल्पना या निर्माण नहीं हैं । जैसे 'अग्नि क्या' पूछनेपर उष्णता कहना उसका गुण बतलाना है । अग्नि स्वयं एक तत्त्व है । वह लकड़ी आदिमें प्रकट हो तभी दृश्य बनता है ।

आप नर हैं– जीव हैं, यह मानें तो नारायणके सखा हैं । इस कन्हाईके सखा उसके समान पूरे न भी हों तो वैसे ही कुछ होंगे या नहीं ? तब वाणी उनका ठीक-ठीक वर्णन कर सकेगी ?

आपके उस सच्चे स्वरूपपर बहुत आवरण आ गया है । आप हैं और चेतन हैं, इतना तो आप समझते-अनुभव करते हैं; किन्तु आप आनन्दस्वरूप हैं, यह अनुभव नहीं करते जब कि आप परमात्माके अंश हैं, आपमें सहज स्वाभाविक आनन्द होना चाहिये ।

नारायणका सखा नर, परमात्माका अंश जीव । सीधी बात कि आप आनन्दघन कन्हाईके अपने हैं, यही आपका ठीक स्वरूप है । इस स्वरूपको स्पष्ट अनुभवमें आना चाहिये । इस अनुभूतिके अभावमें ही समस्त दैन्य, दुःख आदि हैं ।

आपका यह अपना स्वरूप आच्छन्न हो गया और आप मायाके, जगतके बन गये । यही भ्रम आपके आवागमनका, क्लोशोंका कारण है ।

अब आप स्वयं देखो कि आपमें यह अनुभव कैसे जागे कि आप कन्हाईके हैं । आपमें यह अनुभव जागेगा तो दो-तीन बातें अवश्य आपमें आ जायेंगी । आप सहज निर्भय हो जायेंगे । आपकी चिन्ता, दैन्य दूर हो जायेगा । आपके लिए कन्हाईकी स्मृति स्वाभाविक हो जायेगी ।

आपको कन्हाईका बनना नहीं है । आप कन्हाईके हो और वह आपका है । यह नित्य सत्य विस्मृत हो गया और यह नटखट नन्दलाल लगता है

कि आपसे उदासीन हो गया है ।

'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।'

– गीता ४।११

कहनेवाला इसलिए आपसे उदासीन है; क्योंकि आपने इसकी ओरसे मुख फेर रखा है । आप इसे अपनाना चाहो, इसकी ओर देखो तो यह तो आपका है ही और यह नन्दबाबाका लाल आपका है तो दुःख, दैन्य, अभाव आपके समीप आ सकते हैं ?

एक बार एक धनी सज्जनने मुझसे बड़ी नम्रतासे कहा– "आपको कभी कोई आवश्यकता हो तो एक कार्ड मुझे डाल देनेकी कृपा करें ।"

"आपके स्नेहका और उदारताका आभार !" मैंने उन्हें कह दिया ।

"मैं सच्चे हृदयसे प्रार्थना कर रहा हूँ ।" उन्होंने फिर आग्रह किया ।

"इसीलिए मैं आपका आभार प्रकट कर रहा हूँ ।" मैंने कहा– "अन्यथा मैं कहा करता हूँ कि यदि आपको मुझपर उपकार करना है तो उसे अपनी जेबमें ही रहने दीजिये । उसकी आपको ही आवश्यकता पड़ सकती है ।"

"आप अन्यथा मान गये !" वे खिन्न हो गये ।

तब मैंने उनसे पूछा– "आप क्या समझते हैं कि कन्हाई कंगाल हो गया ? लक्ष्मीने उसे तलाक दे दिया ? अथवा उसकी सर्वज्ञता नष्ट हो गयी ? या आजकल वह असमर्थ या अनुदार हो गया है ?"

"इनमें-से कुछ भी सोचना तक अपराध है ।" उन्होंने अपने कानोंपर हाथ रख लिया ।

"जब कन्हाई सर्वसमर्थ हैं, परमोदार है और सर्वज्ञ भी है तब मुझे किसीको कार्ड लिखना पड़े किसी आवश्यकताके लिए, ऐसा अवसर वह आने देगा ?" इसबातका उनके समीप भला क्या उत्तर हो सकता था ।

लेकिन मुझे एक परिचितने निरुत्तर कर दिया । वे कुछ उपहार लाये थे । मैंने कह दिया– "मुझे इसकी कोई आवश्यकता नहीं है ।"

वे बोले– "आपकी तो कभी आवश्यकता नहीं होगी । आपको आवश्यकता हो और तब मुझे अवसर मिले, तब तो मिल चुका मुझे अवसर ।

आवश्यकता तो मुझे है । मैं अपनी प्रसन्नता और कृतार्थताके लिए यह कर रहा हूँ । अब यह तो आपकी उदारता और अनुकम्पापर निर्भर है कि मेरी कृतार्थताके लिए आवश्यकता न होनेपर भी इसे स्वीकार करलें ।"

गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं–

चाटत रह्यौ स्वान पातरि ज्यों कबहुँ न पेट भर्‌यो ।
सो हौं सुमिरत नाम सुधारस पेखत परसि धर्‌यो ।।

यह अवस्था केवल गोस्वामीजीकी, मेरी या अमुक विशेष सिद्ध या सन्तकी ही वस्तु नहीं है । यह तो आपका स्वत्व है; क्योंकि कन्हाई आपका है । उसके अपनत्वको पहिचान कर आपको स्वीकृति देनी है ।

कन्हाई श्रीपति भी है, सर्वसमर्थ भी है और सर्वज्ञ होनेसे हमारी, आपकी स्थिति सदा जानता भी है और ऐसा भी नहीं है कि श्रीव्रजराजकुमार अनुदार या निष्ठुर हो गया हो; तव किसी दूरस्थको कार्ड डालने या किसी विपत्तिमें किसीकी पुकारने-बुलानेका कोई अवसर कभी क्यों आवेगा ?

श्रीकृष्ण मुरलीमनोहर है तो उसका चक्र कहीं खो गया है ? ऐसी कौन-सी विपत्ति है जो चक्रके तेजको सह सके ? तव आपको भय या चिन्ता किस बात की ?

आपका स्वरूप यह कि कन्हाई आपका और कन्हाईके स्वरूपकी बात तो छोड़िये, केवल उसके सम्बन्धोंको एक वार सोच लीजिये ।

जिनसे त्रिभुवनके प्राणिमात्र सदा डरते रहते हैं वे यमराज श्रीकृष्णके सगे साले हैं या नहीं ?

यह रही मृत्युकी बात और ग्रह-अरिष्टोंमें सबसे बलवान शनैश्चर भी साले ही हैं ।

शनिके पिता सूर्यदेवकी पुत्री यमुना ही पटरानी हैं कन्हाईकी और रमा (रुक्मिणी) नाते चन्द्रमा भी साले हैं । बुध है श्यालक पुत्र ।

रुक्मिणी (रमा) के साथ सत्यभामा (भूदेवी) भी तो पटरानी हैं । भौम (मंगल) उनका पुत्र । शुक्र और वृहस्पति सौम्य ग्रह और राहु-केतु तो चक्रके नामसे सदा भयभीत रहनेवाले हैं । आप कन्हाईके अपनत्वको जाग्रत

कीजिये और अरिष्ट एवं कालके अनिष्टसे अभय आपका ।

एक बहिन है, मुझे राखी बाँधती या भेजती है । आयुमें छोटी होनेसे छोटी बहिन है और वह कन्हाईको छोटा भैया मानती है ।

अभी पिछले पाकिस्तानके साथ युद्धके समय पाकिस्तानके वायुयानोंने अमृतसरपर बम डाले थे । भारतीय आकाशवेधी तोपें गगनमें गोले चला रही थीं । उन गोलोंके भारी खोल भी गिर रहे थे । खतरेका भोंपू बजा तो लोग सुरक्षित स्थानोंमें छिप गये ।

उस बहिनके पिताने पीछे मुझे उलाहना दिया– "अपनी इस पगली बहिनको समझाइये । यह उस समय मकानकी छतपर जा चढ़ी और तालियाँ बजा रही थी । मेरी और इसकी माँ की हिम्मत छतपर जाकर इसे पकड़ लानेकी नहीं हुई । हमने इसे सीढ़ियों तक जाकर कई बार पुकारा; किन्तु यह किसीकी सुने तब तो ।"

"यह क्या कहती थी ?" मैंने पूछा ।

"कहती थी– चुप करो ।" उसके पिताने बतलाया "एक ही बात कहती थी– 'मेरा गोपाल पटाखे फोड़ रहा है, मैं देख रही हूँ ।"

अब मैं बहिनको क्या समझा देता ? सृष्टिकी प्रलय भी उस गोपालकी क्रीड़ा है या नहीं ? और छोटा भाई क्रीड़ामें इतना प्रमत्त नहीं हो सकता कि उसकी बहिनको कोई आघात लगे ।

आप भी सहज ही ऐसे निर्भय हो सकते हैं । सृष्टि-प्रलय दोनों आपके अपने गोपालकी क्रीड़ा हैं । आप भूल गये हैं कि गोपाल आपका है, अतः आप भयभीत, दुःखी, दीन होते हैं ।

जो कूड़ेके ढेरपर बैठेगा उसपर कूड़ेकी गन्दगी, कीड़े, दुर्गन्धिके क्लेश आवेंगे या नहीं । यह शरीर और संसार तो कूड़ेका ढेर है । इससे उठिये । यहाँसे आसक्ति हटाइये और अपने स्वरूपको परिष्कृत कजिये ।



४. आपका आहार

आपका आहार वही नहीं है जो आप मुखके द्वारा उदरमें पहुँचाते हो । आप नेत्र, नासिका, त्वचा और कर्ण द्वारा जो देखते, सूँघते, छूते और सुनते हो, वह भी आपका आहार ही है । जैसे मुख द्वारा उदरमें पहुँचाया गया भोजन-जल आदि पचकर आपके शरीरका भाग बन जाता है, शरीरको पुष्ट करता है, वैसे ही देखे, सुने आदि विषय आपके मस्तिष्कमें पहुँचकर आपकी स्मृतिको पुष्ट करते हैं । आपकी बुद्धिका भाग बन जाते हैं । आपके सूक्ष्म शरीरको पोषण देते हैं ।

लेकिन अभी यहाँ पहिले मुखसे लिये आहारकी ही बात करें । वैसे आहार शब्दका अर्थ है संसारके पदार्थोंसे अपनेमें आहृत किया– खींचा भाग और स्थूल शरीरकी अपेक्षा सूक्ष्म शरीरका महत्त्व बहुत अधिक है । यह शरीर जो स्थूल है, इसमें जो अच्छा-बुरा पहुँचता है, मृत्युके पश्चात् यहीं छूट जाता है; किन्तु सूक्ष्म शरीरको (मोक्ष पर्यन्त) आपके साथ रहना है ।

'भुञ्जते ते त्वघं पापाः ये पचन्त्यात्म कारणात्' ॥

गीता ३।१३॥

वे पापी हैं जो केवल अपने लिए भोजन बनाते हैं । यह गीताका वचन इस युगमें तो कम ही सार्थक रहा है । पहिले भी यह केवल तीन वर्ण– ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा दो ही आश्रम गृहस्थ और वानप्रस्थके लिए था । शूद्र जिनकी सेवा करते थे, उनपर आश्रित थे और ब्रह्मचारी तथा गृहस्थ भिक्षाजीवी थे । आज सब गृहस्थोंके यहाँ भी भोजन बनता कहाँ है । जो ढाबों या होटलोंमें भोजन करते हैं, उनपर यह नियम कैसे लगेगा ?

लेकिन मुख्य बात तो हम कन्हाईकी निकटता पानेकी कर रहे हैं, अतः आप घरमें भोजन करते हों या किसी दुकान अथवा होटलमें, भोजन तो करते ही हैं । जो घरोंमें भी भोजन करते हैं, उन्हें भी सम्बन्धियोंके यहाँ, पार्टियों, समारोहोंमें, यात्रामें बाहर भोजन करना ही पड़ता है । आप घरमें या बाहर कहीं भोजन करते हों, आपको कन्हाईको भोजन कराके करना है

या अकेले करना है ? आप अकेले पेट भर लेते हैं और फिर भी आशा करते हैं कि कन्हाई आपका बना रहे ?

पुराने समयमें तो प्रथा थी, आज भी अनेक लोग इसका पालन करते हैं कि भोजन करनसे पहिले आचमन करके मन-ही-मन भोजन भगवान्को अर्पित करके तब वह प्रसाद ग्रहण करते हैं । आपको ऐसा करनेमें भी कठिनाई लग सकती है । लोगोंके मध्य आचमन करना भी अटपटा लग सकता है; किन्तु मन-ही-मन एक क्षण अर्पण करनेमें कोई बाधा है ?

आपको भोजन और जल पीते समय कन्हाई स्मरण आता है ? नहीं आता तो प्रयत्न कीजिये कि स्मरण आने लगे । कन्हाई आपका है तो आपको स्मरण आना चाहिये, विशेष रूपसे तब जब आपकुछ खाने या पीने जा रहे हों । जो अपना अतिशय प्रिय हो, वह ऐसे समय भी स्मरण न आवे, यह हुआ नहीं करता ।

इससे लाभ ? आपका शरीर और मन आपके आहारके अंशसे ही बनता एवं पुष्ट होता है या नहीं ? आपके आहारके साथ भगवत्स्मरण होगा तो उसका प्रभाव आपके पूरे जीवनपर पड़ेगा । वह स्मरण आपके जीवनका आधार बनेगा । इसे छोड़कर आप घण्टे-दो-घण्टे पूजा ध्यान भी करोगे तो वह उतनी ही देरको सीमित बना रहेगा ।

एक स्पष्ट व्यावहारिक लाभ भी है । जब आपको आहार और जल भी मनसे कन्हाईको अर्पित करके ग्रहण करना है तो यह स्मरण आवेगा या नहीं कि जो आप अर्पित करने जा रहे हो, वह इस परम सुकुमार व्रजराजकुमारको अर्पित करने योग्य भी है या नहीं ?

इससे अपवित्र पात्रोंमें, अपवित्र स्थानपर, अपवित्र अखाद्य भोजन या पेय स्वय धीरे-धीरे छूट जायेगा । आपके जीवनमें स्वतः पवित्रता, सात्विकता, सादगी आ जायेगी और यह आपके स्वास्थ्य तथा मनकी शान्तिके लिए भी पोषक, प्रेरक बात होगी ।

मिर्च, खटाई, चटपटे मसाले, होटल और बाजारू चाट-भोजन स्वास्थ्यके लिए हानिकर जानते हुए भी आप स्वादके लोभमें नहीं छोड़ पाते हैं; किन्तु ये सब पदार्थ क्या सुकुमार व्रजेन्द्र-नन्दनके नन्हे मुखमें देने योग्य हैं ? आपका

विवेक स्वयं आपको संयमी बना देगा यदि आप नियम करलें कि कन्हाईको दिये बिना कोई वस्तु मुखमें नहीं डालनी है ।

मैं अपनी ही कहूँ । भोजन स्वयं बनाता नहीं– बनानेकी कला भी नहीं जानता । अनेक अवसर आते हैं जब पेटकी माँग प्रबल होती है और जहाँ, जैसे बर्तनमें जैसा भोजन मिलता है, वह कन्हाईको खिलाने योग्य सर्वथा नहीं लगता । बड़े बेमनसे, बिना अर्पण किये किसी प्रकार गलेसे नीचे उतार तो लेता हूँ; किन्तु आप क्या सोचते हैं कि उसमें स्वाद आता होगा या उस पदार्थको, उस स्थानपर फिर खानेको मन करेगा ?

हम जो काम बेमनसे किसी विवशताके कारण करते हैं अर्थात् न चाहते हुए भी जिसे हमें करना पड़ता है, वह चाहे जितनी बार और चाहे जितनी देर तक– समय तक किया गया हो, उसका संस्कार हमारे जीवनपर– मनपर नहीं पड़ता । उलटे उससे अरुचि बढ़ती जाती है ।

आप जब सचमुच मनसे आहार कन्हाईको अर्पित करनेका नियम कर लेते हैं तो आपका मन उसके विषयमें कन्हाईकी रस-रुचिका चिन्तन करने लगता है और तब आपके अन्तरसे वह अन्तर्यामी स्वयं भी अपनी रुचि सूचित करने लगता है ।

मुझे स्वर्गीय प्रोफेसर रामदास गौड़के सम्बन्धमें यह जानकारी मिली है कि उनको जब प्यास लगती थी तो जलका ग्लास लेकर भगवानको भोग लगाने उठते थे और वहाँ कहते थे– 'रामजी, आपको प्यास लगी है । जल पी लीजिये ।'

सब्जी वाला उनके द्वारपर आता तो उसे रोककर अपने पूजा कक्षमें जाकर पूछते– 'रामजी ! आप करेले खायेंगे या बैंगन अथवा ।'

लौटकर कहते– 'वे अमुक सब्जी तो अस्वीकार करते हैं, अमुक दे दो ।'

यह सूचना उनके अन्तःकरणमें अन्तर्यामी ही तो देता होगा ।

वैष्णव साधुओंमें, ब्राह्मणोंमें भी अब भी कुछ लोग स्वयंपाकी होते हैं । मैंने ऐसे स्वयंपाकी गृहस्थ ब्राह्मणको भी देखा है, जिनकी पत्नी या कन्या दूसरी सब तैयारी कर देती थी; किन्तु भोजन वे स्वयं बनाते थे ।

"क्या करें, यह नन्हा ठाकुर बहुत अटपटा है ।" वे कहते थे– "इसे दूसरेका बनाया भोजन रुचता ही नहीं । यह पहिचान लेता है कि भोजन किसने बनाया है । इसे पदार्थमें स्वाद नहीं आता । अमुकके बनायेमें स्वाद आता है ।"

केवल स्वाद ही आता हो, ऐसी बात नहीं है । इसे तो अमुकके हाथसे चाहे जब कुछ खानेकी भूख लगती है । अमृतसरवाली बहिनने बतलाया– "यह गोपाल बहुत अद्‌भुत है । कभीआधी रातको स्वप्नमें चोटी खींचकर मचलता है– "मुझे भूख लगी है । हलवा बना ।"

वहिन कहती– "चुपकर, अभी सो जा । सबेरे हलवा बना दूँगी ।"

लेकिन जिसे भूख लगी है वह ऐसे चुप करके सो कैसे जायेगा । वह तो मचलेगा ही । रातको उठकर बहिनको स्टोव जलाकर हलवा बनाना पड़ेगा ही ।

उसकी माताने मुझे बतलाया– "इसे रातमें उठकर हलवा बनानेकी सूझती है और फिर बिना खाये धरकर सो भी जाती है । पूछती हूँ कि बना ही लिया तो खाया क्यों नहीं तो कुछ बतलाती नहीं ।"

बहिन क्या बतलावें ? वह बतलावे भी तो उसकी बात किसीकी समझमें आने वाली है ?

श्रीवल्लभाचार्यजीके सम्प्रदाय पुष्टि मार्गमें श्रीकृष्णके बालरूपकी उपासना की जाती है । फलतः शयनके समय भी भोगका थाल रखा जाता है ।

कन्हाई बालक है, अतः क्या मुखमें डालना, क्या नहीं डालना इसे स्वयं नहीं सोचेगा, यह सोचकर इस सम्प्रदायमें एक चिखिया-पद होता है । इस पदपर परीक्षा ली जाती है नियुक्तिके समय कि उस व्यक्तिका स्वाद-ज्ञान उत्तम है या नहीं । भोग लगानेके लिए बने पदार्थोंमें-से वह पहिले तनिक-तनिक अलग निकलवाकर चखता है । जिसे वह स्वीकृति दे, उसी पदार्थका भोग लगता है ।

भगवानको भोग लगाये बिना स्वयं मुखमें न डालना, यह धर्मकी मर्यादा है; किन्तु प्रेमकी मर्यादा है कि पहिले तनिक-सा अलग निकालकर चख लेना कि नमक, चीनी, मसाले आदि ठीक पड़े हैं अथवा कम-अधिक हैं । तब भोग लगाना ।

मुझे कई बार ऐसा दूध पीना पड़ा है या ऐसी दाल-सब्जी खानी पड़ी है, जिसमें चीनी या नमक डालना बनाने वाला भूल गया है और जब वह वस्तु कन्हाईको अर्पित की जा चुकी तो बादमें उसमें चीनी या नमक मिलाना तो ठीक नहीं ।

किसी श्रीरामकृष्ण परमहंसके शिष्योंमें-से उनके एक सत्संगीकी परमहंसजीसे चुगलीकी– 'वे शराब पीते हैं ।'

परमहंसजी उनके आनेपर बड़े स्नेहसे उनसे बोले– 'तुम मद्यपान करते हो तो कोई बात नहीं; किन्तु माँ को अर्पित करके पिया करो ।'

कई दिनों पीछे उनसे श्रीपरमहंसदेवने पूछा– "अब तुम माँको अर्पित तो करते हो ?"

"वह तो छूट गयी ।" उन सज्जनने नेत्रोंमें अश्रु भरकर कहा– "इतनी बुरी वस्तु माँ को अर्पित करनेका साहस मैं नहीं कर सका, अतः पीना ही छोड़ दिया ।"

आप मिर्च, मसाले या तेज नमक पसन्द करते हो तो कर सकते हैं; किन्तु क्या ये शरीरके लिए उपयोगी हैं ? इन्हें नन्हें नन्दलालको अर्पित किया जा सकता है ? कैसा लगेगा उसे, यह आपके मनमें क्यों नहीं आता ?

मैं जब रामवन (सतना) रहता था, वहाँ दोनों समय आँवलेकी चटनी बनती थी । हरा आँवला न हो तो सूखा भिगाकर । चटनीमें आँवला और नमक ही प्रायः होता था । मुझे कषाय अप्रिय है; किन्तु आँवला तो लाभकारी है । कन्हाईको लाभ करेगा, भले वह मुख बनावे । अतः उसे अर्पित करके मैं भोजनके ग्रासोंके सहारे खा लेता था ।

अन्ततः चैत्र शुक्ल प्रतिपदाको नीमके पत्ते, पुष्पोंका चूर्ण या गोली जिसमें अनुपातसे थोड़ा-थोड़ा कालीमिर्च, भुनी हींग, सेंधानमक, अजवायन, जीरा, इमली और शकर मिलाकर लेनेकी शास्त्रीय विधि है, भले तुरन्त बाद माखन-मिश्री अर्पित की जाय, यह कड़वा चूर्ण या गोली अर्पित करनी चाहिए या नहीं ?

कन्हाईको पदार्थ नहीं, अर्पण करने वालेका प्रेम स्वादिष्ट लगता है, यह बात तो इसने सुदामाके चिउड़े और विदुर पत्नीके हाथसे दिये केलोंके छिलके खाकर स्पष्ट प्रमाणित कर दी ।

ऐसा तो होता है कि जब कोई बहुत सामान्य वस्तु या अप्रिय पदार्थ किसी संकोचादिके कारण खाना पड़े तो किसी प्रियजनका स्मरण नहीं आता। औषधि लेते समय तो स्मरण करना उचित भी नहीं; किन्तु जब कोई सुस्वादु पदार्थ सम्मुख आता है तो अपने प्रिय पुत्र, मित्र आदि स्वजनका स्मरण स्वतः आ जाता है, भले वे समीप न हों।

आप कहीं बाहरसे घर आने लगते हो या बाजार जाते हो तो अपने छोटे बच्चेके लिए कुछ ले चलना है, यह आपको स्मरण आता है या नहीं ?

आपके आराध्य भगवान् नारायण हों, भगवान् भूतनाथ या महाकाली हों तो आपको ऐसा कुछ स्मरण नहीं आवेगा। राजराजेश्वर श्रीराघवेन्द्र हों तो भी नहीं आवेगा। वे ही अपने आश्रित जनोंकी चिन्ता और पालन करते हैं। अल्पशक्ति छुद्र मनुष्य उनकी क्या चिन्ता करेगा; किन्तु आप नन्हे कन्हाईको अपना बनाना चाहते हैं और आपको घर लौटते समय स्मरण नहीं रहता कि यह उत्सुकतासे आपकी प्रतीक्षा करता होगा ?

आपने अव तक नियम न किया हो तो अब नियम कर लें कि उस स्थितिको छोड़कर जव किसी संकोच या दबावके कारण (जान-बूझकर नहीं) कोई ऐसा पदार्थ खाना-पीना पड़े जो अर्पण योग्य न हो, शेष सब समय आप कम-से-कम मनसे अर्पण किये बिना कोई पदार्थ खाने-पीनेको मुखमें नहीं डालेंगे।

मुखमें जो जिह्वा है उसमें दो इन्द्रियोंका निवास है। रसनेन्द्रिय और वागेन्द्रिय। इसे परमात्माने इसीलिए मुख जैसे स्थानमें रखा है कि वह पूर्णतः आपके नियन्त्रणमें रहे। अतः खाने-पीने या बोलनेके लिए मुख खोलते समय आपका दायित्त्व हो जाता है कि आप विचार कर लें कि आपका वह आहार और बोलना उचित भी है या नहीं।

जैसा खाये अन्न, वैसा बने मन।

यह पुरानी लोक प्रचलित बात है। लेकिन आप जानते हैं कि वैष्णव 'खाना खा लीजिये' सुनकर चिढ़ते हैं। 'भोजन कर लीजिये' सुनना भी उन्हें प्रिय नहीं है। वे 'प्रसाद ग्रहण कीजिये' सुनना पसन्द करते हैं। वे अपने लिए बनाये पदार्थको भोजन योग्य ही नहीं मानते। वे तो भगवदर्पित प्रसादको ही ग्रहणके योग्य मानते हैं।

एक सज्जनको श्रीहनुमानजीकी पूजा करनी थी। बड़े प्रेमसे उन्होंने

चन्दन, माला, धूप, दीप आदिसे पूजा की । जब लड्डू और रोट भोग लगाने चले तो पास बैठे वैष्णव सन्तने रोक दिया– "ठहरो ! ये पदार्थ इन पवननन्दनको अर्पण योग्य भी हैं या नहीं ?"

"इनमें शुद्ध देसी घी लगा है । देसी खांड़ पड़ी है और मैंने गंगाजलसे बनवाया है ।" उन सज्जनने कहा ।

"सो सब तो ठीक; किन्तु तुम जानते हो कि हनुमानजी अमनिया भोग स्वीकार नहीं करते ?" वैष्णव सन्तने बतलाया– "पहिले तुलसीदल डालकर इसे श्रीरघुनाथजीको अर्पित करो, फिर इनको चढ़ाना ।"

आप यदि अमनिया पदार्थ ही खाते-पीते रहेंगे तो आपका जीवन अमनिया ही बना रहेगा । अमनिया जीवनतो मायाका ग्रास है । मायादेवी उसपर अपना स्वत्व छोड़ नहीं सकतीं ।

आपको यदि मायादेवीको टरकाना है तो कन्हाईको अपनाना होगा और तब इसके प्रसादका भोजी बननेका नियम बनाना पड़ेगा ।

श्रीरामचरित-मानसमें श्रीरामको निवास-स्थान बतलाते हुए महर्षि वाल्मीकिने जो चौदह निवास योग्य स्थान बतलाये, उनमें एक है–

तुमहिं निवेदित भोजन करहीं ।

तव प्रसाद पट - भूषन धरहीं ।।

श्रीमद्भागवतमें उद्धवजीने श्रीकृष्णसे कहा–

तवोच्छिष्ट भोजिनो दासाः तव मायां जयेमहि ।

'हम तो आपका जूठा खानेवाले सेवक हैं । आपकी मायाका हमें क्या भय । उसका जोर हमपर नहीं चल सकता । उसे तो हम सहज जीत लेते हैं ।'

आपको भी यदि मायासे पार पाना है तो यह उद्धवजीका व्रत अपनाना चाहिये ।



५. आपका संग-साथ

आप जो कुछ हैं, आपका निर्माण आपके संग-साथने किया है । श्रीरामचरितमानस एक ध्रुव सत्यको ही स्पष्ट करता है—

मति कीरति गति भूति भलाई ।
जो जेहि जतन जहाँ जब पाई ॥
सो जानन सत्संग प्रभाऊ ।
लोकहु बेद न आन उपाऊ ॥

बुद्धि, सुयश, सद्गति, वैभव, सद्गुण इनमें-से जो जिसने जिस किसी भी उपायसे जहाँ कहीं और जब भी पाया है या आगे पावेगा, उसे सत्संगका ही प्रभाव समझो । इसके लिए लोकमें और वेद-शास्त्रोंमें भी दूसरा कोई उपाय नहीं है ।

आप जानते हैं और अनुभव भी किया होगा कि— जो बात अपने प्रयत्नसे वर्षोंमें नहीं आती, वह किसी अनुभवीके बतलानेपर क्षणोंमें आ जाती है ।

तात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिय तुला इक अंग ।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग ॥

यह बात बहुत अधिक ध्यान देनेकी है । आपका अध्ययन और दूसरोंके उपदेश आपपर उतना प्रभाव नहीं डालते, जितना प्रभाव आपपर उन लोगोंका पड़ता है, जिनका आपका संग-साथ है ।

संसार आपके मनमें देखकर, छूकर, चखकर, सूँघकर उतना प्रवेश नहीं करता, जितना सुन-सुनकर प्रवेश करता है । दृश्य, स्पर्श-ज्ञान, रस-स्वाद तथा गन्धके विषयमें भी जितना ज्ञान सुनकर या पढ़कर होता है, उतना उनके प्रत्यक्ष अनुभवका नहीं होता ।

पढ़ना भी नेत्र का विषय भले हो, श्रवण ही माना जाता है और इस युगमें तो पढ़ना ही सबसे सुगम सुलभ सत्संग है ।

जैसे कानके मार्गसे– श्रवणके द्वारा सबसे अधिक संसार हृदयमें आता है, वैसे ही भगवान् भी हृदयमें कानके मार्गसे ही आते हैं ।

संसारके पदार्थ तो प्रत्यक्ष सम्पर्कमें आते हैं । उनके विषयमें आप अपनी ज्ञानेन्द्रियोंके प्रत्यक्ष अनुभवसे भी बहुत कुछ जानते हैं अथवा प्रयत्न करके जान सकते हैं; किन्तु भगवान तो इन्द्रियोंका विषय नहीं है । कन्हाई किसीके लिए प्रत्यक्ष होता है तो अपनी कृपासे ही होता है ।

कृष्णकी ऐसी कृपा किसीपर कब होती है ? जब उसके हृदयमें श्रीकृष्णके प्रति प्रेम हो । उसके मिलनकी तीव्र अभीप्सा हो और यह प्रीति तो श्रवणसे ही आती है ।

कन्हाई पहिले हृदयमें आवे, तब उसके प्रति प्रीति जगे और तब कहीं उसके मिलनकी सम्भावना बने । हृदयमें वह आवेगा श्रवणके मार्गसे–

प्रविष्टः कर्णरन्ध्रेण स्वानां भावसरोरुहम् ।
धुनोति शमलं कृष्णः सलिलस्य यथा शरत् ।।

–भागवत् २/८-५

अपने जनोंके कर्णके मार्गसे उनके हृदय-कमलमें प्रवेश करके श्रीकृष्ण वैसे ही उसे निर्मल बना देते हैं, जैसे शरद्ऋतु जलको ।

इन्द्रियोंमें कर्ण खुली इन्द्रिय है । यह न मुखके समान बन्दकी जा सकती और न नेत्रोंके समान इनको बन्द करना आपके वशमें है । अतः आप जहाँ जिन लोगोंमें, जैसे वातावरणमें रहेंगे, वहाँ होनेवाली चर्चा आपके कानोंमें आयेगी ही और आप चाहें या न चाहें, उसका प्रभाव आपके चित्तपर पड़ता ही रहेगा ।

मनुष्य जो सोचता है, जैसे लोगोंमें उठता-बैठता है, वैसा बन जाता है । इसलिए आपको अपने संग-साथके सम्बन्धमें बहुत सावधान रहनेकी आवश्यकता है ।

सत्संग जितना लाभप्रद है, प्रभावशाली है, कुसंग उससे कहीं अधिक

हानिकारक और बहुत अधिक प्रभाव डालनेवाला है । वर्षों तक उपदेश-श्रवणका प्रभाव भले न पड़े; किन्तु कानमें पड़ी कोई गन्दी बात जैसे भुलाये नहीं भूलती ।

इसका कारण है प्रकृति अधोगामिनी है । जलको ऊपर ले जानेको विशेष प्रयत्न करना पड़ता है; किन्तु नीचेकी ओर तो वह स्वयं बहता जाता है ।

एक पत्थरको पर्वतकी चोटी पर चढ़ाना हो तो एड़ी चोटीका पसीना एक करना पड़ेगा; किन्तु शिखरपर से हल्के धक्केसे लुढ़का दो तो वह स्वयं लुढ़कता जायेगा और जब तक कोई ठीक रोक न मिले, नीचेको लुढ़कता रहेगा ।

बड़े प्रयत्नसे, बहुत दिनोंमें साधक कामादि दोषोंको क्षीण कर पाता है; किन्तु–

'तरंगायिता अपि इमे संगात् समुद्रायन्ति ।'

–नारदभक्ति सूत्र/४५

प्रयत्नसे– साधनसे ये भले तरगोंके समान क्षुद्र हो गये हों कभी-कभी हो आते हों; किन्तु कुसंग मिलनेपर शीघ्र समान गम्भीर, दुष्पार हो जाते हैं ।

जीव अनन्त जन्मोंसे संसारमें भटक रहा है । उसके अन्तःकरणमें जो सञ्चित संस्कार हैं, उनमें अधिकांश पाशविकताके ही हैं; क्योंकि पशु-पक्षी, कीट-पतंग ही उसे अधिक होना पड़ा है । मनुष्यके अन्तःकरणकी स्थिति बञ्जर भूमि जैसी ही है । उसमें तृणों, काँटोंके बीज भरे पड़े हैं । खाद-पानी मिलते ही वे उग जाते हैं । कोई उत्तम पुष्प या फलका बीज हुआ भी तो अंकुरित होते ही उन तृणों, काँटोंसे दबकर मुरझा जाता है । उन तृणों, काँटोंको तो बार-बार उखाड़ते रहना पड़ता ।

वर्तमान कालमें समाजकी परिस्थिति बहुत ही विकट है । सत्संग दुर्लभ हो गया है और कुसंग बिना चाहे पद-पदपर मिलता रहता है ।

कुसंगसे सर्वथा बचे रहना आजके समाजमें रहते हुए सम्भव नहीं है । कुशल यही है कि आप जिस बातसे ठीक-ठीक पूरी अरुचि रखते हैं, उसके सम्बन्धमें सुननेपर भी आपपर उसका प्रभाव नहीं पड़ता ।

सेनाकी स्थितिका मुझे पता नहीं; किन्तु पुलिसमें पर्याप्त अधिक लोग

हैं जो शाकाहारी हैं । उनके आस-पास, साथियोंमें अधिकांश लोग मांस-अण्डा खाने वाले हैं और उसका गुणगान तो शाकाहारियोंको सुनते ही रहना पड़ता है; किन्तु उनकी अपनी रुचि प्रभावित नहीं होती ।

मैं जानता हूँ कि आयुर्वेदमें प्याज और लहसुनकी बहुत प्रशंसा है । अनेक रोगियोंको जब औषधिके रूपमें उनके सेवनको कहा जाता है तो वे स्पष्ट अस्वीकार कर देते हैं ।

इतनी दृढ़ निष्ठा हो तभी साधकका चित्त वर्तमान वातावरणमें अपने पथपर समाहित रह सकता है ।

मुझे एक बाबाजी स्मरण आते हैं । बाबाजी उन्हें लोग कहते ही नहीं थे, उनका वेश साधुका था और उन्होंने प्रयाग नगरसे दूर एक कुटिया बना भी रखी थी । लेकिन वे एक छपायी करनेवाले प्रेसमें मशीनमैन थे । प्रेसके अन्य कर्मचारियोंसे बहुत कम बोलते थे । अपनी मशीनपर जुटे रहते और छपायीका काम न हो तो चुपचाप बैठे रहते या मशीनको स्वच्छ करते होते । अतिरिक्त समयमें भी कामको अस्वीकार नहीं करते थे; किन्तु भले रातमें देरसे अवकाश मिले, अपनी कुटियापर ही रात्रि-विश्राम करते थे । उस प्रेसके स्वामी उनकी श्रमशीलता, ईमानदारी और सन्तोष-वृत्तिकी प्रशंसा करते थे ।

जीवनमें श्रीकृष्ण-प्रेम आवे, इसके लिए संसारसे और संसारके भोगोंसे, पद-प्रतिष्ठासे उपरति तो आवश्यक ही है । यह तो हो नहीं सकता कि आप संसारसे भी प्रीति करते रहें और भगवत्प्रेम भी प्राप्त कर लें । संसारमें अपनेको कर्तव्य-पालन तक सीमित करलें तो काम चल सकता है ।

संसारमें, सांसारिक लोगोंसे उतना ही संग-साथ जितना कर्तव्य-पालनके लिए आवश्यक है । उसे चलाते हुए शेष समयमें आपकी प्रीति, रुचि होनी चाहिये ऐसे स्थान एवं ऐसे लोगोंके पास जाने, मिलने-जुलनेमें जहाँ भगवत्-चर्चा सुननेको मिले ।

एकान्त-सेवन उत्तम है, ध्यान-धारणा, पूजा-पाठ भी उत्तम है; किन्तु इससे न नवीन ज्ञान मिलता और न भगवत्प्रेम । एकान्तमें तो अपनी जानकारीका मनन हो सकता है अथवा ध्यानादि; किन्तु ऐसे ध्यानसे एकाग्रता, समाधि भले उपलब्ध हो जाय, श्यामसुन्दरका प्रेम नहीं मिला करता ।

एक दीपकसे दूसरे दीपकके जलनेके समान जिसके हृदयमें श्रीकृष्ण प्रेम है, उसके सम्पर्कसे आपके हृदयमें श्रीकृष्ण प्रेमकी ज्योति जागेगी ।

'आजकल सच्चे सन्त या भगवत्प्रेमी मिलते नहीं हैं– यह आपकी बात सच हो सकती है; किन्तु आंशिक सच ही है । आप यह कहकर बैठ रहेंगे कि हीरा तो अत्यन्त दुर्लभ है तो आपको हीरा कभी मिलेगा ? हीरेकी खदान लेनेवालोंको भी कई मन मिट्टी खोदने-खुदवानेपर, उसे धोनेपर तब कहीं हीरा मिलता है ।

श्रीस्वामी अखण्डानन्द सरस्वतीने बतलाया कि एक बार वे वृन्दावनसे कुछ भक्तों-सेवकोंके साथ पैदल प्रयाग जानेको निकले । मार्गमें एक गाँवके समीप पहुँचे तो वहाँके एक गृहस्थने आकर उन लोगोंको आग्रहपूर्वक अपने घर आमन्त्रित किया । बड़े प्रेमसे सबको भोजन कराया । स्वामीजीने उससे पूछा– "आपमें यह साधु-सेवाका भाव कैसे आया ?"

उसने बतलाया– "मुझसे एक सन्तने कहा कि 'यदि तुम्हारी इच्छा हो कि कभी तुम्हारे आँगनमें हंस उतरे तो तुम चिड़ियोंको दाना डालना प्रारम्भ करो । अधिक तो कौए तथा गैरैया आदि आवेंगे ही; किन्तु कभी हंस तुम्हारे घरके ऊपरसे उड़ता निकला तो पक्षियोंको दाना चुगते देखकर वह भी उतर आवेगा ।' मैंने तभीसे जो भी साधु मिले, उसकी अपनी शक्तिके अनुसार सेवा करनी प्रारम्भ कर दी ।"

आप भले ऐसी साधु सेवा न करो; किन्तु जहाँ कथा– सत्संग होता हो वहाँ नियमित जाने लगो, जो लोग भगवान्‌के भजन एवं उनकी चर्चामें रुचि लेनेवाले हों उनसे मिलना, उनके समीप कुछ समय बैठना, उनसे परिचय-मैत्री प्रारम्भ कर दो तो दूसरे भी भगवत्प्रेमी आपसे परिचय करने लगेंगे । तब कोई भगवद्भक्त भी आपसे मिल लेंगे और आपपर उनका अनुराग होगा ।

इस प्रवृत्तिमें भी थोड़ा विवेक आवश्यक है । मैंने 'साध्य और साधन' में एक लेखमें दिया है कि कभी सत्संग भी कुसंग हो जाता है । सब साधु और सत्संगियोंका सत्संग, उनसे मिलना-जुलना सबके लिए लाभकारी नहीं होता । वह बुद्धि-भ्रम उत्पन्न करने वाला भी हो सकता है । जो श्रीकृष्ण प्रेम चाहता है, वह मूर्तिपूजाके विरोधी कबीरपन्थी, आर्यसमाजी, राधास्वामी

मतवाले या अद्वैत वेदान्तनिष्ठ साधु-साधकसे मिलेगा तो उसके मनमें विपरीत भाव जागेंगे । वह अपने पथमें शंकालु हो सकता है । अतः जिनकी अपने समान निष्ठा एवं रुचि हो ऐसे साधु या सत्संगीसे ही मिलना-जुलना हितकर होता है ।

दूसरे आजकल साधु या सत्संगी सब निःस्वार्थ, उत्तम चरित, सचमुच भगवद्भक्त ही नहीं होते । अतः व्यक्तिको सहसा किसीसे प्रगाढ़ परिचय करके उसका अन्तरंग बननेका प्रयत्न नहीं करना चाहिये । आप अपनेको कथा-उपदेश या भगवच्चर्चा श्रवण तक सीमित रखेंगे, अधिक निकटता नहीं उत्पन्न करेंगे तो आपको लाभ होगा और ठगे नहीं जायेंगे ।

लोग झूठ बोलते हैं, धोखा देते हैं, ठग लेते हैं, इसलिए क्या आप सभी लोगोंसे मिलना-बोलना या बाजार जाकर कुछ खरीदना त्याग देते हैं ? ऐसा इसलिए नहीं कर सकते क्योंकि इसके बिना काम नहीं चलता । आवश्यक सावधानी रखते हुए, कभी कुछ ठगाते हुए भी आप लोगोंसे व्यवहार करते हैं या नहीं ?

आप सांसारिक प्रयोजनोंको तो अनिवार्य आवश्यकता मानते हैं, किन्तु पारलौकिक कल्याणको महत्त्व नहीं देते । जबकि इस संसारमें आपका यह जीवन कुछ थोड़े वर्षों तक ही रहनेवाला है और इसके बादका जीवन अनन्त है । उसमें उन्नति, सुरक्षा, सहायता आवश्यक लगे तो आपका संग-साथ सुधर जायेगा । उसमें आपको आशंका होगी भी तो आप उसे त्यागेंगे नहीं । केवल आवश्यक सावधानी रखना सीखेंगे ।

कन्हाई आनन्दघन है । इसकी प्रीति मरणोत्तर जीवनके ही कल्याणके लिए नहीं है । इसकी प्रीति वर्तमान जीवनमें ही जीवनको आनन्दमय बना देने वाली है ।

आपने अनुभव किया है कि आप जिन लोगोंसे मिलते हैं, उनमें यदि कुछ आपको प्रिय भी लगे तो उनकी चर्चा, रहन-सहनके प्रति भी आपका झुकाव होने लगता है । अतः जो संसारकी आसक्ति और भोगोंमें लगे हैं– इनकी ही चर्चा-प्रशंसा करते हैं, उनसे आवश्यकता होनेपर ही मिलिये । जहाँ तक बन सके, उनसे कम-से-कम बोलिये ।

न तथास्य भवेत् क्लेशो बन्धश्चान्यप्रसंगतः ।
योषित् संगात् यथा पुंसो यथा तत् संगिसंगतः ।।

भा० ११/१४-३०

मनुष्यको वैसा क्लेश (अविद्या, अस्मिता, राग-द्वेष तथा अभिनिवेश) दूसरी बातोंसे नहीं होता, जैसा स्त्रियोंमें आसक्तिसे (स्त्रीके लिए पुरुषमें आसक्तिसे) होता है और स्त्रियासक्तिसे भी वैसा नहीं होता जैसा स्त्रियासक्त-लम्पट पुरुषोंके संग-साथसे होता है ।

आप संसारमें सुख-उन्नति, भोग एवं पद आदिके महत्त्वको सुननेमें लगोगे तो सुनानेवाले ऐसा वर्णन करेंगे मानो वह सर्वथा निर्दोष ही नहीं, आवश्यक हो और आप बहुत सामान्य प्रयत्नसे उसे प्राप्त कर लोगे ।

मेरे कई परिचित हैं जिन्होंने दाँतके दर्द या पेटमें वायुकी पीड़ाके कष्टसे छुटकारा पानेके लिए तम्बाकू खाना प्रारम्भ किया । वह पीड़ा एक बार केवल दब गयी । कुछ दिन बाद फिर होने लगी और तम्बाकूने पिण्ड पकड़ा तो फिर छोड़ा नहीं जा सका । उसके कारण जो दूसरी हानियाँ होती हैं, वह तो हो ही रही हैं ।

सत्पुरुषोंको भी एक व्यसन होता है–

स्त्रिया विटानामिव साधुवार्ता ।

भा० १०-१३-२

जैसे लम्पट पुरुष बार-बार स्त्रियोंकी ही चर्चा करते रहते हैं, वैसे ही भगवत्प्रेमी सत्पुरुष बार-बार भगवान्के रूप, गुण, नाम, प्रभावादिकी चर्चा करते रहते हैं । उन्हें भी भगवच्चरित सुननेका व्यसन होता है ।

श्रीरामचरित-मानसमें सनकादिक कुमारोंके लिए कहा गया है–

आसा बसन ब्यसन यह तिनहीं ।
रघुपति चरित होइ तहँ सुनहीं ।।

रा.च.मा. ७-३१-६

ऐसा ही व्यसन श्रीहनुमानजीको है–

यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं तत्र तत्र कृतमस्तकाञ्जलिम् ।
वाष्पवारिपरिपूर्णलोचनं मारुतिं नमत राक्षसान्तकम् ।।

धन्य हैं वे जिन्हें ऐसा व्यसन हो । आपके आस-पास ऐसे व्यसनवाले जो महानुभाव हों, उनका संग-साथ आप प्रयत्नपूर्वक करेंगे तो कन्हाई आपको अपनानेके लिए उत्सुक होगा ।



६. आपका पठन-पाठ

आप पढ़ते क्या हैं और पाठ किसका करते हैं ? पठन-अध्ययन एक वस्तु है और पाठ करना उससे भिन्न वस्तु, यह आपके ध्यानमें होगा ।

पठन-अध्ययन भी दो प्रकारका होता है– एक किसी लौकिक प्रयोजनसे, दूसरा अपनी रुचिसे आनन्द या ज्ञान-वर्धनके लिए ।

आजकल लोग समय काटनेके लिए भी कुछ पढ़ने लगते हैं । लेकिन यह समझते ही नहीं कि जैसे मुखखाली न रहे, इसलिए चाहे जो बड़बड़ाते रहना या खाते रहना निरापद नहीं है, उससे हानि, बड़ी हानि भी हो सकती है, वैसे ही चाहे जो पढ़ने लगना भी बहुत हानिकर हो सकता है ।

पढ़ना आपका मानसिक आहार है । जैसे आहार आपके शरीरको पोषण देता है, पढ़ना आपका मनोनिर्माण करता है । आप अविचारपूर्वक या जीभके स्वादवश जब कोई अस्वास्थ्यकारी वस्तु खा लेते हैं तो रोगी हो जाते हैं, आपको पीड़ा होती है । इसी प्रकार अनुपयुक्त पुस्तक या लेख आदि आपके मनको रोगी कर देता है । उससे काम-क्रोध आदि मनोरोग पनपते-बढ़ते हैं । इससे आपका मानसिक स्वास्थ्य, शान्ति नष्ट होती है । दुर्भाग्यवश ऐसे साहित्यकी आज भरमार है और सिनेमा तो प्रायः ऐसे ही होते हैं ।

जो पठन आपको अपने किसी आवश्यक ज्ञानकी वृद्धिके लिए करना है, वह लौकिक प्रयोजनका पूरक होनेसे आपको करना ही है । भले वह वर्तमान प्रयोजनका पूरक न हो । अनेक भाषाओं एवं विद्याओंका अध्ययन ऐसा ही है । इस प्रकारका अध्ययन बड़े-बड़े विद्वान् भी जीवन-पर्यन्त करते रहते हैं ।

अपनी रुचिकी तृप्ति या आनन्दके लिए आप जो पढ़ते हैं, उसमें अवश्य विवेक करना आवश्यक है । उसमें ऐसा साहित्य चुनिये जो आपको सुरुचि सम्पन्न बनावे तथा आपकी रुचिका परिष्कार भी करे ।

यही पठन आपको संसार या श्रीकृष्णके समीप ले जा सकता है । केवल समय काटनेके लिए भी पढ़ना हो तो ऐसा कुछ मत पढ़िये जो आपकी रुचिको विकृत करे । 'आ बैल मुझे मार' जैसा ही काम है विकृति बढ़ानेवाला

साहित्य पढ़ना ।

लेकिन प्रतिदिन जैसे आप भोजन करते हैं, वैसे ही प्रतिदिन कुछ पढ़ना— अध्ययन करना भी आवश्यक है । इससे आपका मस्तिष्क ठीक विचार सक्षम बना रहेगा और आपका मन स्वस्थ सबल रहेगा ।

कन्हाईकी ही बात करें । इस नन्द-तनयको आपने देखा तो है नहीं । देख पाना बिना प्रेमके तो सम्भव भी नहीं और—

जानें बिनु न होइ परतीती ।
बिनु परतीति होइ नहिं प्रीति ॥
प्रीति बिना नहिं भगति दृढ़ाई ।
जिमि खगपति जलकै चिकनाई ॥

(रा.च.मा. ७।८८, ७-८)

जानकारी ही नहीं तो विश्वास कैसा और बिना विश्वासके प्रेम नहीं; किन्तु जो इन्द्रिय-प्रत्यक्ष नहीं है, उसके सम्बन्धमें जानकारी कैसे हो ?

आपकी सब जानकारी अपने अनुभवके आधारपर नहीं है । आपने कभी परमाणु बम देखा है ? या सब विष खा खाकर उनका मारकपना जाना है ? हमारी जानकारीका अधिकांश भाग सुना या पढ़ा है । इसी प्रकार श्रीकृष्ण-सम्बन्धी जानकारी भी आपको सत्संगसे प्राप्त करनी है और उत्तम ग्रन्थोंके भी अध्ययनसे सुलभ निरापद सत्संग दूसरा कोई नहीं है ।

कन्हाईके चरित, गुण, महिमा, प्रभावादिका वर्णन बार-बार पढ़ेंगे तो इसकी आत्मीयतामें विश्वास होगा । इसमें प्रीति होगी और इसके मिलनकी उत्कण्ठा जागेगी ।

एक परिचित व्यवसायी हैं । बहुत व्यस्त रहते हैं; किन्तु आध्यात्मिक विषयोंके अच्छे गम्भीर विद्वान हैं । बहुश्रुत हैं । उनसे मैंने पूछा— 'इतना व्यस्त रहते आपको यह जानकारी कैसे प्राप्त हो गयी ?'

उन्होंने बतलाया— "मुझे पढ़नेका व्यसन है । रविवारको मैं दूसरा कोई काम नहीं करता । उस दिन क्या कितना पढ़ना है, सबेरे ही निर्णय करके जुट जाता हूँ और देर रात तक लगा रहता हूँ । मुझसे कोई रविवारका

समय माँगता है तो वह मुझे बहुत अखरता है ।"

कन्हाईके सम्बन्धका श्रवण और इसके विषयका अध्ययन यदि व्यसन बन गया तो जीवन कृतार्थ हो गया । यह व्यसन ही आपको भगवत्प्रेम प्रदान कर देगा ।

इस पठनसे पाठ थोड़ा भिन्न है । पाठ कहते हैं किसी ग्रन्थके कुछ अंशको नियमपूर्वक प्रतिदिन पढ़नेको और इस पढ़नेके भी नियम होते हैं ।

सामान्य पठन-अध्ययन तो आप लेटे-लेटे भी करते हैं और प्रायः बिना मुखसे शब्दोच्चारण किये करते हैं; किन्तु पाठ शुद्ध होकर बैठकर ही किया जाता है और मौन होकर पाठ करना उत्तम नहीं माना जाता ।

पाठमें छः दोष माने गये हैं–

मौनी गीती शिरःकम्पी तथा अलिखित पाठकः ।
अनर्थज्ञो अस्पष्ट वक्ता च षडेते पाठकाधमाः ॥

इन छः को पाठ करनेवालोंमें निकृष्ट मानना चाहिए–

१. **मौनी**– बिना शब्दोच्चारणके मन ही मन पाठ करनेवाला ।

२. **गीती**– गाकर पाठ करनेवाला ।

३. **शिरःकम्पी**– सिर या पूरे शरीरको आगे-पीछे या बगलमें हिलाते हुए पाठ करनेवाला ।

४. **अलिखित पाठकः**– बिना लिखे या छपे ग्रन्थको सामने रखे केवल जबानी पाठ करने वाला । इसमें स्तुति-पाठ कण्ठस्थ करनेकी आज्ञा है । श्रीहनुमान-चालीसा, नारायण-कवच, गजेन्द्र स्तुति, शिव महिम्नः स्तोत्र आदि स्तुतियोओंका पाठ कण्ठस्थ करके बिना ग्रन्थके किया जा सकता है ।

५. **अनर्थज्ञः**– आप जो पाठ कर रहे हैं, इसका अर्थ नहीं जानते, केवल शब्दोच्चारण कर रहे हैं, इसका बहुत कम प्रभाव होता है । अतः यदि आप किसी संस्कृत ग्रन्थका पाठ करते हैं और संस्कृत नहीं जानते तो किसी विद्वान या टीकासे उस ग्रन्थका साधारण अर्थ अवश्य पढ़ लें ।

६. **अस्पष्ट वक्ता**– इतनी शीघ्रतासे पाठ करना कि शब्द पूरे-पूरे

उच्चारित ही न हों । कुछ अधूरे शब्द रहें या छूटते जायें अथवा स्वयं भी पता न लगे कि कौन-सा शब्द बोला गया ।

जिस ग्रन्थमें आपके आराध्यका चरित है, गुण या महिमा है, वह संस्कृतमें हो या हिन्दीमें, गद्यमें हो या पद्यमें, उसे आप अपना पाठ-ग्रन्थ चुन सकते हैं ।

पवित्र होकर, स्थिर बैठकर, इतना स्पष्ट कि समीप बैठा व्यक्ति ठीक-ठीक सुन सके, बिना गाये, धीर-कण्ठसे अर्थपर ध्यान रखकर पाठ करना चाहिए ।

एक निश्चित अंश प्रतिदिन पाठ करना चाहिए और पाठके ग्रन्थको पूज्य मानकर सम्मानपूर्वक ही रखना चाहिए । उसको दूसरे सामान्य ग्रन्थोंके समान चाहे जहाँ नहीं रखना चाहिये और न चाहे जब उसका उपयोग करना चाहिये । आप जितना उसका सम्मान करेंगे, उसके पाठसे आपको उतना लाभ होगा ।

पाठ क्यों करना चाहिए ?

आप जानते हैं कि आस्थावान लोगोंमें पाठ बहुत प्रचलित है । पंजाबमें तो हिन्दू और सिख समय-समयपर ग्रन्थ साहबका पाठ रखते हैं । अखण्ड पाठ भी होता है और दुर्गासप्तशती या श्रीमद्भागवतका एक साथ सौ या सहस्र पण्डितोंके द्वारा भी पाठ कराया जाता है ।

यह केवल आस्थावान लोगोंकी सनक नहीं है । पाठसे अनेकोंकी अनेक प्रकारकी कामनाएँ पूर्ण होती हैं । जो काम सामान्यतः नहीं होनेवाले लगते थे, वे पाठ करनेसे या करानेसे सरलतासे सम्पन्न हो गये, ऐसा बहुत लोगोंका अनुभव है ।

इसीलिए सकाम पाठकी सम्पुट लगाकर, विशेष कामनाओंके लिए विशेष-विशेष सम्पुट लगाकर पाठ करनेकी विधियाँ हैं ।

एक ही ग्रन्थका बार-बार पाठ किया जाय, वह ग्रन्थ पढ़ा-समझा हो तो भी उसका या उसके कुछ अंशका प्रतिदिन पाठ किया जाय, इसका प्रयोजन है ।

पाठ करनेसे एक विशेष प्रकारकी शक्ति प्राप्त होती है । जैसे स्नान करनेसे शरीर स्वच्छ होता है और स्फूर्ति आती है, वैसे ही नित्यपाठ आन्तरिक स्नान है । इससे अन्तःकरणकी शुद्धि होती है और मानसिक प्रेरणा मिलती है साधनके लिए ।

आप गीता, भागवत या श्रीरामचरितमानसका कोई श्लोक अथवा चौपाई कण्ठ कर लें जो आपको बहुत साधारण लगे और मन ही मन उसे बार-बार दुहराते रहें । धैर्यपूर्वक दो-चार दिन उसको दुहरावें । ऐसा करनेसे अचानक किसी समय आपको उसका ऐसा अर्थ सूझेगा जो स्वयं आपको चकित कर देगा । यह उसके उस अर्थपर पड़ा आवरण उसके बार-बार पाठ करनेसे दूर हुआ । इसी प्रकार अन्तःकरणमें ही स्थित परमात्मतत्त्वपर जो आवरण है, वह पाठ करते रहनेसे दूर होता है या शिथिल पड़ता है ।

पाठ करना तो फिर भी बड़ी बात है, पाठ करनेका संकल्प और उसकी चेष्टा भी चमत्कार उत्पन्न करती है, यह मैंने देखा है ।

वाराणसी जिलेमें एक गाँव है महुअर । जब देशका स्वाधीनता आन्दोलन चल रहा था तब उस गाँवके एक क्षत्रिय युवक सत्याग्रह आन्दोलनमें मेरे साथी थे । नाम तो उनका जयनाथ सिंह था; किन्तु सब उन्हें जैनूसिंह कहते थे । उनके सगे भाई देवनाथ सिंह जिन्हें देऊसिंह कहा जाता था, मुझसे सम्भवतः सन् १९३८ में मिले । वे सत्याग्रह आन्दोलनमें तो सम्मिलित नहीं हुए थे; किन्तु मुझे जानते थे ।

मैं सन् १९३६ से ही वाराणसीसे दूर हो गया था और सन् १९३७ से मेरठसे निकलवाले मासिक-पत्र 'संकीर्तन'का सम्पादन करने लगा था । उस समय मैं मेरठसे अपनी जन्मभूमिके क्षेत्रमें बहुत थोड़े दिनोंको आया था ।

देवनाथ सिंह मेरे समीप कुछ समय बैठे रहे और एकान्त मिलनेपर बोले– "मेरी इच्छा गीता पाठ करनेकी होती है । अब इस आयुमें गाँवके किसी व्यक्तिसे अक्षर पढ़ने बैठनेमें लज्जा आती है । कोई उपाय बतलाइये ।"

वे जमींदार थे । उन दिनों ग्रामीम सम्पन्न किसान-जमींदारोंमें अनेक अपने या अपने पुत्रोंके लिए पढ़ना-पढ़ना अनावश्यक मानते थे । कह देते थे– "लड़केको पढ़ाकर क्या करना है । उसे कोई नौकरी करनी है ?"

मैं जानता था कि जयनाथसिंह जो मेरे कांग्रेस आन्दोलनके साथी थे, उन्होंने भी कांग्रेस आन्दोलनमें आनेके पश्चात् अक्षरज्ञान सीखा और धीरे-धीरे हिन्दीकी पुस्तकें पढ़ने लगे थे । उनके भाई देवनाथसिंह भी निरक्षर ही थे ।

किसी भी आयुमें पढ़ने लगना कोई लज्जाकी बात नहीं है, यह भले सत्य है; किन्तु ३०-३५ वर्षके ग्रामीण युवकको यह तथ्य समझा देना मुझे सरल नहीं लगा और जिसे वर्णमालाकी पहिचान भी न हो, उसे गीता पाठ करनेकी भला कौन-सी युक्ति मैं बतला देता ।

यह तो अब मैं जानता हूँ कि बाबा नन्दजीने भी अपने लालको पढ़ाया नहीं, छोटेपनमें ही गोचारणमें लगा दिया; किन्तु यह नन्हा अनपढ़ गोपाल, जिसे चाहे उसे सहज महापण्डित बना देता है ।

उस समय मैंने देऊ (देवनाथ) सिंहको समझा दिया– "गीता भगवान्‌की वाणी होनेसे भगवान्‌का स्वरूप है, अतः गीताका स्पर्श भी गीता-पाठ जैसा ही है । आप गीताकी पंक्तियोंपर अंगुलि फिर लिया करें ।"

उन्होंने मेरी बातपर विश्वास कर लिया । सन्तुष्ट होकर चले गये । पीछे कहींसे गीताप्रेस (गोरखपुर) से छपी गीताके मूल श्लोकोंकी बड़े अक्षरोंकी पुस्तक खरीद लाये और नियमसे प्रतिदिन प्रारम्भसे अन्ततक उसकी पंक्तियोंपर अंगुली फिराने लगे ।

अब मुझे स्मरण नहीं है कि वर्ष, डेढ़ वर्ष या दो वर्षमें मैं फिर मेरठसे उधर गया; किन्तु मेरे उधर जानेका किसीसे पता लगा तो देवनाथसिंह फिर मेरे पास आये । उन्होंने बड़ी नम्रतासे मुझसे कहा– "मैं गीताकी पंक्तियोंपर अंगुली फिराता हूँ तो मेरे मुखसे कुछ निकलता है । मैं क्या बोलने लगता हूँ, मुझे पता नहीं है । आप थोड़ी देर एकान्तमें चलकर इसे देख लीजिये ।"

मैं उनको लेकर एकान्तमें गया । उन्होंने अपनी पुस्तक खोली, जो वह साथ लाये थे । मेरे आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा जब मैंने देखा कि वे जिन पंक्तियोंपर अंगुली फेरते हैं उनका शुद्ध उच्चारण उनके मुखसे होता है ।

मैंने उन्हें गीताकी दूसरी पुस्तक तो नहीं दी । मुझे इसकी आवश्यकता नहीं लगी और न वहाँ मेरे पास दूसरी मोटे या मझोले टाइपकी कोई प्रति

थी; किन्तु उस प्रतिको बीच-बीचमें-से खोलकर कई स्थानोंपर उनसे अंगुली फिरवा कर देख लिया कि वे जिस पंक्तिपर अंगुली फिराते थे, उसका उनके मुखसे शुद्ध उच्चारण होता था ।

यह तथ्य उन्हें मैंने बतलाया तो वे विह्वल हो गये अश्रु बहने लगे। गद्गद् स्वरमें बोले– "मुझ जैसे साधारण व्यक्तिपर भगवान्‌की इतनी कृपा !"

इसके बाद वे मुझे मिले प्रयाग-झूसीमें और हरिद्वारमें । तब थे तो गृहस्थ वेशमें ही; किन्तु पैदल अकेले पूरे भारतकी तीर्थयात्रा कर रहे थे । तीन बार उन्होंने लगातार यह पैदल तीर्थयात्राकी और चौथी बार ऐसी ही यात्रा करते द्वारिका पहुँचे तो श्रीद्वारिकाधीशके दर्शन करते समय ही मन्दिरमें उनका शरीर छूट गया ।

यह घटना इतने विस्तारसे देनेका कारण यह है कि मैं इसमें बहुत कुछ प्रत्यक्ष साक्षी रहा हूँ । सुनी-सुनायी बात नहीं है और पाठ तथा कन्हाईकी कृपाका अच्छा उदाहरण है ।

श्रीमद्भागवतके प्रसिद्ध कथावाचक एवं विद्वान पण्डित श्रीनाथजी पुराणाचार्य (वृन्दावन) इसे 'ग्रन्थ-कृपा' कहते हैं । उनका कहना है– "गीता, श्रीमद्भागवत, श्रीरामचरितमानस जैसे ग्रन्थ मन्त्रात्मक हैं और चेतन हैं । इनका श्रद्धापूर्वक आश्रय लिया जाय तो पाठ करनेवालेपर ये कृपा करते हैं

वृन्दावनमें अनाज मण्डीमें लगभग सन् ३७-३८ में एक अत्यन्त वृद्ध महात्माके दर्शन किये थे । उनका नाम श्रीअवधदासजी था । वे श्रीमद्भागवतको ही आराध्य मानते थे और सदा भागवतका मासिक क्रमसे पाठ करते थे । वृद्धावस्थामें दृष्टि लोप हो जानेपर भी आसनपर बैठकर ग्रन्थ सामने रखकर पाठ करते थे । ग्रन्थ तो उन्हें कण्ठस्थ था और उसी अनुमानसे पन्ने उलटते जाते थे ।

आप अपने आराध्य-इष्टके चरित, गुण आदि जिसमें हों उस ग्रन्थको निष्ठापूर्वक अपनाकर उसका नित्य पाठ करेंगे तो आपपर ग्रन्थ-कृपा भी होगी और आपमें इष्टके प्रति भक्तिका जागरण भी होगा ।



७. आपका जप-कीर्तन

आप जप कैसे करते हो ? आपने सुना-पढ़ा होगा कि जप तीन प्रकारसे होता है ।

१. वाचिक जप— मुखसे स्पष्ट बोलकर ।

२. उपांशु जप— शब्द बिना किये जीभ और ओष्ठ हिलाते हुए ।

३. मानसिक जप— मन ही मन जप मन्त्र दुहराना ।

आपने यह भी पढ़ा-सुना होगा कि मानसिक जपका बहुत महत्त्व होता है । यह पढ़ सुनकर बहुत लोग मानसिक जप करनेका भ्रम पालते हैं ।

वाचिक जप वस्तुतः सबपर बहुत प्रभाव डालता है; किन्तु बोल-बोलकर जप करना सुविधापूर्ण नहीं है । इससे समीप वालोंको उद्‌वेग हो सकता है और समाजमें रहते इसे चलाया नहीं जा सकता ।

मन एक साथ दो काम नहीं करता । इसलिए जबतक मन ठीक एकाग्र न होता हो, मानसिक जप होगा ही नहीं । मन जब अनेक बातें सोचता है, तब मानसिक जप कौन करता है ?

मानसिक जप प्रारम्भ करनेपर दो-चार बार मन्त्र या नाम जप तो होता है, फिर मन अपनी उधेड़-बुनमें लग जाता है । लेकिन श्वांसकी एक नियमित गति बन जाती है । इसी गतिके कारण भ्रम होता है कि मानसिक जप हो रहा है ।

मानसिक जप उसीसे होगा, जिसका मन एकाग्र हो सकता हो । अतः बहुत महत्त्वपूर्णके प्रलोभनमें नहीं आना चाहिये । जैसे देशमें सबसे महत्त्वपूर्ण काम तो प्रधानमन्त्रीका है; किन्तु सब तो प्रधानमन्त्री बन नहीं सकते ।

ऐसी अवस्थामें उपांशु जप ही सबके लिए सुगम एवं करणीय है । शब्दोच्चारण न हो; किन्तु जीभ और ओष्ठ हिलते रहें, यह जपकी विधि सब अपना सकते हैं ।

जपके भी दो भेद हैं— १. मन्त्र जप, २. नाम जप । मन्त्र वह है,

जिसमें प्रारम्भमें प्रणव या कोई बीजमन्त्र लगा है और अन्तमें नमः, स्वाहा, वषट्, वौषट्में-से कुछ है । नमः आदिमें भी हो सकता है ।

२. नाम-जप– यह केवल कोई भगवन्नाम होता है । इसमें प्रणव, बीज या नमः प्रायः नहीं होता ।

मन्त्र तो कम-से-कम हाथ-पैर धोकर, पवित्र आसनपर बैठकर ही करना चाहिये । द्विजाति, यज्ञोपवीतधारी सभीको कम-से-कम एक माला गायत्री मन्त्रका प्रतिदिन जप करना चाहिये । कुछ लोग केवल गायत्री मन्त्रका ही जप करते हैं और कुछ लोग गायत्रीका जप थोड़ा करके अपने इष्टदेवके मन्त्रका जप करते हैं ।

किसी अनुष्ठान या पूजन विशेषमें जिस देवताका पूजन हो, उसके मन्त्रका जप करना पड़ता है ।

नामजप चलते-फिरते, उठते-बैठते सब समय किया जा सकता है । उसके लिए यह नियम नहीं है कि पवित्र होकर ही किया जाय । इसलिए मन्त्रजप पवित्र होकर, बैठकर और शेष सब समय लोग नामजप करते हैं ।

जपके दो भेद कामनाके कारण होते हैं । १. **सकाम जप**– जब किसी कामना-विशेषकी पूर्तिके लिए किया जाता है । ऐसा जप अपने इष्टदेवके मन्त्र या नामका भी हो सकता है और कामना-विशेषका जिस देवतासे सम्बन्ध हो, उसके मन्त्रका भी हो सकता है । जैसे लक्ष्मी प्राप्तिके लिए लक्ष्मीजीके मन्त्रका जप या विद्या-प्राप्तिके लिए सरस्वतीके मन्त्रका जप ।

२. **निष्काम जप** – निष्काम जप अपने इष्टदेवके मन्त्रका ही होता है: किन्तु अन्तःकरणकी शुद्धि या भगवत्प्रेमकी प्राप्तिकी कामनाको कामना नहीं माना जाता; क्योंकि यह कामना तो कामनाओंको ही नष्ट करनेवाली है ।

जपमें– मन्त्र या नाममें ही शक्ति है । अतः बिना मन लगे भी जप करते रहनेसे उसका लाभ होता ही है ।

कुछ वर्षों पूर्व मैंने एक विवरण पढ़ा । अमेरिकाके किसी छोटे नगरके स्थानीय समाचार-पत्रमें एक छोटा-सा समाचार निकला– 'महर्षि महेश जो एक ही अक्षर बार-बार दुहरानेको कहते हैं, वैसा करनेसे नशा-सेवनकी प्रवृत्ति घटती है ।'

अमेरिकाकी सरकारके लिए अपने युवक-युवतियोंमें नये-नये और तीव्रतम नशोंके सेवनकी बढ़ती प्रवृत्ति चिन्ताका विषय है । किसी अधिकारीकी उस समाचारपर दृष्टि पड़ी । उसने अपने ऊपरके अधिकारियोंको लिखा । अन्ततः मनोवैज्ञानिकोंकी एक समिति नियुक्त की गयी जाँच करनेके लिए । समितिने समाचारका समर्थन कर दिया ।

फल हुआ कि महर्षि महेशसे सरकारी तौरपर कहा गया कि वे अपने ढंगका विद्यालय चलावें । उसमें प्रति एक सहस्र लोगोंके लिए एक प्रशिक्षक तैयार करें जो लोगोंको उनकी साधन-पद्धति सिखलावें ।

यह क्रम लम्बे समय तक नहीं चला; क्योंकि अमेरिकन-चर्च इसका विरोध कर रहा था और महर्षि महेश जिस ध्यानातीत ध्यानका प्रचार कर रहे थे, उसमें अधिकारियोंकी कोई रुचि नहीं थी । नशा छुड़ाना महर्षि महेशका कोई प्रधान लक्ष्य नहीं था ।

अमेरिकाके मनोवैज्ञानिकोंने कैसे जाँच की, पता नहीं; किन्तु यह पता है कि महर्षि महेश एकाक्षर बीज मन्त्रका जाप बतलाते हैं और आवश्यक नहीं है कि सब एकाक्षर बीज मन्त्र नशा-सेवनकी प्रवृत्तिको कम ही करें । मन्त्रोंमें मारण-उच्चाटनके मन्त्रभी होते हैं तथा भारतमें अनेक सम्प्रदायोंके साधुओंमें गांजा-चरस, भांगका सेवन बहुत पुराने समयसे चलता है । अघोरी साधु तो शराबका खुला सेवन करते हैं ।

अवश्य जपकी एक प्रणाली ऐसी है जिसमें मन अवश्य लगेगा । मन लगानेके लिए उसमें कोई विशेष परिश्रम आवश्यक नहीं है । वह प्रणाली है लिखित नाम जपकी । आप कागजपर लेखनीसे कोई भगवन्नाम लिखते रहें; किन्तु लिखते समय उस नामका मुखसे उपांशु जप भी करते रहें, जब तक आप नाम-लेखन करेंगे, आपका मन उसमें लगा रहेगा ।

अनेक लोग कहते हैं– "नाम जप तो करते हैं; किन्तु उसमें मन नहीं लगता । बिना मनके जपसे क्या लाभ ?"

ऐसे लोग या तो मूर्ख हैं या बेईमान । वे यह भी नहीं समझते कि नाम जप करते-करते मन लगेगा । मनको एकाग्र करनेका साधन है नाम-जप । मन एकाग्र हो, लगने लगे तब नाम-जप प्रारम्भ हो; ऐसा नहीं होता । जैसेपानीमें

उतरकर हाथ-पैर मारनेसे तैरना आता है । तैरना आ जाय तब पानीमें उतरनेका आग्रह नहीं चल सकता ।

दूसरी बात, जो वस्तु अपने समीप हो, वह किसीको दी जा सकती है । जो वस्तु अपने अधिकारमें न हो, वह किसीको दी कैसे जा सकती है ? मन अपने अधिकारमें नहीं है, उसे तो भगवानमें लगानेकी बातकी जाती है; किन्तु जीभ अपने अधिकारमें है, उसे लगाया नहीं जाता यह बात ईमानदारीकी नहीं है ।

इतने पर भी जिन्हें मन लगानेकी ही धुन है, उन्हें नाम-जप करते हुए नाम-लेखन करना चाहिये । उनका मन नाम लेखनके समय तक लगा रहेगा ।

अनेक बार अनेक साधकोंने पूछा है— जप करते समय क्या ध्यान करना चाहिये ?

योग-दर्शनका कहना है—

तज्जपः तदर्थ भावनम् ।

प्रणवका जप करो और जप करते हुए उसके अर्थकी भावना करते रहो ।

ध्यानमें रखना चाहिये कि यह साधन योगका है । योगके सब साधनोंका लक्ष्य चित्तवृत्ति निरीधरूप समाधि-सिद्धि है ।

भक्ति-मार्गके आप पथिक हैं तो आपको समाधि तो सिद्ध नहीं करनी । भक्तिमें नामको नामी भगवानसे अभिन्न माना जाता है । नाम स्वयं भगवान् हैं । अतः नाम-जप करते समय दूसरा कोई चिन्तन नहीं करना चाहिये, केवल अपने कानसे अपने जपको सुनते रहनेका बराबर प्रयत्न करना चाहिये ।

यह तो सीधे ढंगसे गम्भीर बने रहनेवाले साधकोंके लिए बात है । आपका यदि कन्हाईसे लगाव है तो आपको सचमुच नाम-जप करते समय मनसे कन्हाईकी भावना करनी चाहिये ।

आप मनसे चिन्तन कीजिये कि आप जप करने लगते हैं तो छोटा-सा सांवला पीताम्बरकी कछनी लगाये, घुँघराले केशोंमें मोर पंखोंसे बड़े-बड़े अञ्जन रंजित नेत्रोंवाला बालक आपके सामने आकर उकड़ू बैठ जाता है और

आपके मुखकी ओर देखकर पूछता है– "तू क्या कर रहा है ? तू किसे गाली दे रहा है ?"

कभी-कभी वह ठीक आपके समान अपने पतले लाल-लाल ओष्ठ हिलाकर आपकी नकल करने लगता है । आप जपके समय नकल करते उसके ओष्ठोंका हिलना और उसके हँसतेसे बड़े-बड़े नेत्रोंका चिन्तन करते रहिये ।

इससे क्या होगा ?

आप अपने जपसे चाहते क्या हैं ? यही तो चाहते हैं कि कन्हाई आपके हृदयमें आने लगे । इस प्रकार चिन्तन करनेसे धीरे-धीरे यह चपल श्यामसुन्दर आपके चिन्तमें अधिक स्पष्ट होने लगेगा और तब आप आनन्द विभोर हो उठोगे । यही तो आपके जपकी परम सफलता है ।

जप आन्तरिक-शरीर हृदयमें स्निग्धता, मधुरता लाने वाला अर्थात् गुणाधान करने वाला साधन है । अतः पाठके समान जप भी प्रतिदिन नियमपूर्वक करना चाहिये ।

आपने जीवनमें कीर्तनको अपनाया है या नहीं ? नहीं अपनाया है तो अपनाकर अवश्य देखिये । आप देखेंगे कि कीर्तन तत्काल आनन्द मग्न करता है ।

जप चुप रह कर किया जाता है और कीर्तन तो गायन है । केवल नाम-कीर्तन ही नहीं होता, पद-भजन गान भी कीर्तन है और इसके लिए कई व्यक्ति होने आवश्यक नहीं है । अकेले भी किसी बाजेपर अथवा ताली या चुटकी बजाते हुए कीर्तन किया जाता है ।

आपके साथ कोई दूसरा नहीं है तो हुआ क्या ? आप तो स्नान घरमें गुनगुनाते हुए भी कीर्तन कर सकते हैं । गाना और रोना सबको आता है ।

कहते हैं कि एक बार रात्रिमें भीमसेन कीर्तन करने लगे । उनके उच्चस्वर और खरखरे नादसे दूसरोंकी नींद टूट गयी । युधिष्ठिरने उन्हें बुलाकर कहा 'भाई' दूसरोंकी निद्रामें बाधा मत दो । वनमें जाकर एकान्तमें कीर्तन करो ।'

भीमसेन वनमें जाकर कीर्तन करने लगे । उनका स्वर जैसे सिंहकी गर्जना । पशु-पक्षी चीखकर भागने लगे; किन्तु श्रीकृष्ण वहाँ पहुँच गये । उन्हें

रात्रिमें वनमें आया देखकर भीमने पूछा– "तुम यहाँ कैसे ?"

श्रीकृष्ण– "तुम्हारा कीर्तन सुनने आया हूँ ।"

भीमने चौंककर कहा– "मेरे स्वरसे तो पशु भी भड़क कर भागते हैं ।"

श्रीकृष्ण– "पशु ही भड़ककर भागते हैं । तुम ऐसे ही तन्मय होकर कीर्तन करो तो मैं तो आ ही गया हूँ ?" थोड़ी देरमें पशुपति भी डमरू बजाते आ जायेंगे ।

भगवान्‌ने कहा है–

नाहं वसामि बैकुण्ठे योगिनां हृदय न च ।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ॥

"नारदजी ! मैं न बैकुण्ठमें बसता और न योगियोंके हृदयमें । मेरे भक्त जहाँ मेरा गुणगान करते हैं, मैं वहीं रुका रहता हूँ ।"

अकेले किया जाय, गाया जाय तो वह कीर्तन कहलाता है और कुछ लोग मिलकर भगवन्नाम या गुण-लीलादि गान करें तो उसे संकीर्तन कहते हैं । अनेक मन्दिरोंमें पद-कीर्तन होता है, जिसे समाज कहते हैं ।

अनेक घरोंमें घरके सदस्य अथवा पास-पड़ोसके लोग भी मिलकर किसी निश्चित समयपर कीर्तन करते हैं । सामुहिक संकीर्तनोंमें प्रायः बाजे भी रहते हैं ।

स्व० काका कालेलकरने अपने एक लेखमें लिखा है– "कीर्तनका रस-राग, भोग और दम्भ– इन तीन नालियोंसे बह न जाय, इसमें सावधान रहना चाहिये ।"

जब संकीर्तनमें बहुत उत्तम वाद्य तथा स्वर, ताल, आलापपर ध्यान दिया जाता है तो वह कीर्तन न होकर संगीत-समारोह हो जाता है । उसमें आनन्द आ सकता है; किन्तु वह भगवद्भावना उत्पन्न नहीं करता । वह संगीतका रस-कानका रस है ।

जब संकीर्तनमें आने वालोंका ध्यान उसमें बँटने वाले प्रसादपर अथवा आगत आकर्षक चेहरोंपर लगा रहता है तो वह भोगानन्द है । वहाँ जिह्वा या नेत्रके भोगको प्रधानता मिल गयी और भजनका रस इस नालीसे बह गया ।

अनेक लोग संकीर्तनमें रोने लगते हैं, नृत्य करते हैं, मूर्च्छित हो जाते हैं। यदि उमंगसे स्वाभाविक होता है तो बहुत उत्तम है; किन्तु जब कोई अपना चश्मा बचाकर बार-बार गिरनेका नाटक करता है तो यह दम्भ दूसरोंके भी रसमें विघ्न बनता है। ऐसा दम्भ केवल कीर्तनका रस ही नहीं नष्ट करता, पाप भी है। इससे आन्तरिक पतन होता।

'**गान प्रियो माधवः**।' कन्हाईको गायन प्रिय है। उसकी वंशी और उसके नृत्यकी तुलना तो कभी कहीं सम्भव नहीं; कि ब्रजके गोप बालक जब ताली बजाकर या लाठीपर ही हाथसे थाप देते गाते थे तो नन्दलाल मुग्ध होकर उनकी प्रशंसा करता था। ताली वजाता था या नाचने लगता था, यह बात आपने पढ़ी-सुनी है या नहीं ?

आप विश्वास करो कि यह गोपकुमार बहुत भोला है। इसे स्वर ताल नहीं रिझाया करता। यह तो हृदयके भावपर रीझता है।

आपको अपने गायनसे, संगीत-पटुता अथवा वादनसे लोगोंको मुग्ध करना हो तो बात दूसरी, संगीत और वाद्य उत्तम कला हैं; किन्तु इन कलाओंकी सार्थकता भी उस कलादि गुरुको प्रसन्न करनेमें ही है।

प्रसिद्ध संगीताचार्य स्व० श्रीविष्णु दिगम्बर जीकी ट्रेन यदि यात्रामें अयोध्यासे जा रही हो तो उनका नियम था कि अयोध्या ट्रेन छोड़कर उतर पड़ते थे और वहाँ कनक भवनमें श्रीरघुनाथजीको कीर्तन सुनाकर ही दूसरी ट्रेन पकड़ते थे।

आप संगीतज्ञ या किसी वाद्यके निपुण वादक नहीं भी हो सकते हैं। सब गायक या वादक नहीं हुआ करते; किन्तु आपको कहाँ दूसरोंके लिए गायन करना या कोई वाद्य बजाना है। आप कीर्तन कीजिये इस भोले नन्हें कन्हाईके लिए। प्रत्येक माता अपने शिशुके लिए चुटकी या ताली बजाकर कुछ गा लेती है या नहीं ?

अकेलेमें हो या समूहमें नेत्र बन्द कर लीजिये। समूहमें लोग बैठे हों तो बैठकर और खड़े हो तो खड़े होकर कीर्तन कीजिये। दूसरोंकी ओर मत देखिये। आप नियमसे प्रतिदिन कुछ समय कीर्तन कीजिये और विश्वास कीजिये कि कन्हाई आपका कीर्तन सुनता है। सुनकर प्रसन्न होता है।



८. आपकी वेशभूषा

आपका जीवन भगवन्मय बने आपके मनमें कन्हाईका स्मरण आता रहे, इसके लिए आप क्या करते हैं ? आपको जो रात-दिन स्मरण आते हैं— शरीर, परिवार आदि, उनके लिए आप क्या करते हैं, यह सोचकर देखिये और तब सोचिए कि आप श्रीकृष्णके लिए क्या करते हैं ।

आपको स्नानके समय कन्हाई स्मरण आता है ? आजकल जलाशयोंमें तो बहुत कम स्नान हो पाता है । स्नान होता है स्नान घरमें; किन्तु आप वहाँ कभी देखते हो कि आप जिस जलसे स्नान करने जा रहे हो, वह मौसमके अनुसार ऐसा उष्ण या शीतल है या नहीं कि परम सुकुमार श्यामको सुखद लगे ।

पहिली बात तो यह कि आजकल लोग तेल लगाते ही कम हैं और लगाते भी हैं तो स्नानके पश्चात् लगाते हैं । आप जानते हैं कि तेल लगाकर व्यक्ति अपवित्र हो जाता है ? तेल लगाकर जब तक स्नान न किया जाय, व्यक्ति मन्दिरमें जाने या पूजा-पाठके योग्य नहीं होता ।

कन्हाईकी घुँघराली काली अलकोंमें लगाने योग्य सुगन्धित तेल तो मिलनेसे रहा, अतः यह काम आप मैया यशोदाके लिए छोड़ दे सकते हो; किन्तु यह आपको क्यों स्मरण नहीं आता कि यह चपल स्नान करते समय आपके समीप आ सकता है । यह स्वयं स्नान करानेका आग्रह कर सकता है या आप पर छींटे उछालने लग सकता है ।

नन्दनन्दनको स्नानका तो तबसे व्यसन है जब घुटनों चलता था । दो बूँद जल मिले तो उसीको फैलाकर उसपर पेटके बल लेट जाता था ।

केवल मर्यादा पुरुषोत्तम मर्यादानुसार स्नान करते हैं । भगवान् नीलकण्ठ गंगाधर हैं । इसीसे उनके श्रीविग्रहपर अखण्ड धारा गिरायी जाती है । भगवान् नारायण शेषशायी हैं, उन उदधिशायीके सहस्राभिषेककी विधि है ।

कन्हाई स्नानके अवसर ही ढूंढ़ा करता है । अतः स्नानके समय तो इसे स्नान करा दिया करें । भले यह मानसिक स्नान कराना ही हो । श्रीविग्रहको स्नान तो आप पूजाके समय करावेंगे ।

'प्रभु प्रसाद पट भूषन धरहीं ।'

रा.च.म. २।१२८-२

आपको यह स्मरण रहता है ? जब आप नवीन वस्त्र या आभूषण (अंगूठी आदि) पहिनने लगते हैं तो पहिले कृष्णको पहिनाना स्मरण आता है ?

किसी एककी एक बारकी घटना है । बड़ी उमंगसे नवीन गद्दा और रजाई भरवायी । अकेले व्यक्ति थे । पलंगपर वह गद्दा बिछाया, उसपर नवीन श्वेत चादर बिछायी, रजाई पैताने सजा दिया और कमरेमें ताला बन्द करके कहीं कथा-श्रवण करने चले गये ।

लौटकर ताला खोला तो द्वारपर ही खड़े रह गये और रोने लगे– 'हाय, मैंने क्या जाना था । गद्दे रजाईकी रुईमें तनिक-सा इत्र मिलवा देनेकी समझ मुझमें क्यों नहीं आयी ?'

उनकी रजाई भूमिमें पूरी बिछायी थी । उसपर और पलंगके गद्देपर जैसे कोई बन्दर कूदता रहा हो, छोटे-छोटे पैरोंके दबाबके चिन्ह बहुत स्पष्ट और इतने गहरे थे कि कूदे बिना नहीं बन सकते थे ।

आप गद्दा रजाई बनवाते हो तो कभी स्मरण आता है कि इसपर लेटने या कूदने नटखट ब्रजराज कुमार कभी आ सकता है ?

अपने वस्त्र बनवाकर समर्पण करते हो अपने आराध्यको ? यह सोचते हो कि मैया यशोदाका चपल लाल आपके कुर्ते, कमीज, कोट या पतलूनको कैसे-कैसे अटपटे ढंगसे पहिनेगा या उनको उलट-पलट कर हँसेगा ?

आप तिलक कैसा करते हो, इस सम्बन्धमें मुझे कुछ कहना नहीं है । तिलक तो अपनी रुचि एवं सम्प्रदायके अनुसार ही किया जाना उचित है । बिना तिलकका कोरा ललाट अशुभ माना जाता है ।

लाल, पीला, श्वेत, काले रंगके तिलक होते हैं । अभी मैंने हरा, बैंगनी

तिलक नहीं देखा है । सिन्दूरी या सिन्दूरका तिलक भी शाक्त उपासनामें चलता है और गणेशजी, शक्ति अथवा हनुमानजीके श्रीविग्रहका दर्शन करने जानेपर सिन्दूर-प्रसाद मिल सकता है ।

एक बार एक प्रसिद्ध महात्माने मुझसे कहा– "मैं अपना तिलक चलाना चाहता हूँ । कोई ऐसा तिलक बतलाओ जो किसी सम्प्रदायका न हो ।"

मैंने उनसे कहा– 'ऊर्ध्वपुण्ड और त्रिपुण्डके जितने भेद किये जा सकते हैं, उनमें बिन्दी तथा श्री (खड़ी रेखा) के सब भेद और दोनोंका सम्मिलित रूप भी सम्प्रदायोंने अपना लिया है । सर्वथा नवीन तिलक तो धनका चिन्ह या गुणाका चिन्ह ही है । आप इनमें-से कोई चुनना पसन्द करेंगे ?

वे महात्मा अप्रसन्न नहीं हुए, खुलकर हँसते रहे । फिर वे चन्दन केशरसे त्रिपुण्ड लगाकर मध्यमें उसीसे खड़ी मोटी रेखावाला तिलक कुछ दिन बनाते रहे । उनके भालपर चन्दनकी श्वेत या केशर मिश्रित बिन्दी भी मैंने देखी है ।

प्रश्न यह नहीं है कि आप कैसा तिलक करेंगे । प्रश्न यह है कि आप इस नन्हे नन्दलालके भालपर कैसा तिलक करना चाहेंगे ?

संकोच मत कीजिये । श्रीव्रजराज कुमारके भालपर सब तिलक सुशोभित ही होंगे । इसके ललाटपर तो मैयाका लगाया कज्जल बिन्दु या किसी सखाका लगाया गोबरका टीका अथवा बिन्दु भी विचित्र शोभा देता है । यह किसी विशेष तिलकका आग्रही नहीं है ।

करना इतना ही है कि आप जब अपना तिलक करने लगो तो इसका भी ध्यान कर लो कि यह आपके समीप आ बैठा है और अपना सिर आगे करके कह रहा है– 'मुझे भी टीका लगा !'

आवश्यक नहीं है कि जितनी साज-सज्जा आप अपनी करते हो, उतनी ही इसकी भी करो । इसे तो बहुत आभूषणोंसे सजे रहना प्रिय है । अतः इसका शृंगार पुष्पोंसे करना उत्तम ही है । मन ही मन भी आप इसका श्रृंगार कर सकते हो ।

श्रीकृष्णाके कण्ठमें लाल ज्योतिर्मय कौस्तुभ मणि तो है ही, घुटनोंसे नीचे तक लटकती वैजयन्ती वनमाला है । पाँच पुष्पोंसे (पाँच रत्नोंसे भी)

वनमाला बनती है । तुलसीदल, कुन्द, आकके पुष्प, पारिजात (हारश्रृंगार) तथा कमल पुष्प वनमालाके पुष्प हैं ।

तुलसीदलोंकी माला वनमालासे भी नीचे तक लटकती है । इनके अतिरिक्त मोतियोंकी, गुञ्जाकी मालाएँ भी यह पहिने रहता है और दूसरे सखा जो माला पहिना दें, वह भी पहिन लेता है । फलतः कन्धेसे ठुड्ढी तक मालाएँ भरी रहती हैं ।

केशोंमें मयूरपिच्छ कभी एक, कभी तीन, कभी पाँच होते हैं । उनके अतिरिक्त लाल आम्रपल्लव-पुष्प भी लगे होते हैं और ऊपरसे तुलसीदलोंकी माला, कई रंगोंकी पुष्पमाला और गायके नोवनेकी रस्सी भी लपेट लेता है ।

कानोंमें कुण्डल, कानोंके ऊपर कनैरके पीले पुष्प धरे, कुण्डलोंके ऊपर भी कदम्ब और कभी गुंजाकी माला पहिने होता है ।

भुजाओंमें अंगद, कलाइयोंमें कंकण, कटिमें किंकिणी, चरणोंमें नुपूर और बहुधा इन सब स्थानोंमें गुंजा या पुष्पोंके भी आभरण सखा पहिना देते हैं ।

कन्हाईको सखा पुष्प-पराग, गेरू, खड़िया, राजरज आदिसे पूरा चित्रमन्दिर बना देते हैं । इसके कपोल, भुजा, पीठ, पेट आदि पर रंग-बिरंगे चित्र प्रतिदिन दिनमें कई-कई बार बना दिया करते हैं ।

स्नानके पश्चात् ही कन्हाई बिना श्रृंगारके दीख सकता है । खेलमें लगनेपर चित्र बहुत कुछ मिट-मिटा जाते हैं और पुष्पों, गुंजाके आभरण भी अस्तव्यस्त हो जाते हैं ।

संसारमें प्रतिदिन इतनी सजा कभी कोई अभिनेता (नट) भी नहीं रहता । अतः जब आप अपनेको स्नो, पाउडर आदिसे सजाने लगो, अपना केश-श्रृंगार करो तो इस नटनागरका भी ध्यान करलो । इसे भी मनसे तनिक सजाओ । आप जो श्रृंगार करोगे, इसपर सब शोभा देगा ।

कन्हाई पीले रंगके वस्त्रकी धोती पहिनता और पीला ही पटुका कन्धेपर रखता है; किन्तु इसके शरीरकी नीली कान्ति पटुके और धोतीको, जहाँ वे शरीरपर इकहरे हों, हरी बनाये रहती हैं । अतः इसका पटुका और धोती भी हरी-पीली दुरंगी दीखती है ।

यह व्रजराज कुमार तो बालक है और गायें चरानेवाला गोपाल है। आप इसका ध्यान-चिन्तन करेंगे तो आपका हृदय निर्मल होगा; किन्तु आप इसके समान वेश-भूषा बनाने लगेंगे तो समाजमें उपहासास्पद बनेंगे।

वेशभूषा अपने देश एवं कालके अनुसार शालीन तथा सुविधाजनक होनी चाहिये। दक्षिण भारतमें सर्दी नहीं पड़ती। अतः वहाँ पूरे वर्ष लुंगी और आधी बाँहकी कमीज पहिनकर रहा जा सकता है। वहाँका यह वेश वहाँके समाजमें शालीन माना जाता है। लेकिन जब दक्षिण भारतीय उत्तर भारतमें शीतकालमें अपर्याप्त वस्त्रमें आ जाते हैं तो शीतसे कष्ट पाते हैं।

दक्षिण भारतमें या उत्तर भारतमें ग्रीष्मकालमें कोट-पतलून और टाई भी लगानेवाले वस्त्रोंके भीतर स्वेदसे तो भींगते ही रहते हैं, उनकी आडम्बरपूर्ण यह वेशभूषा उपहासास्पद लगती है और उनके पश्चिमी देशोंके अन्धानुयायी होनेकी घोषणा करती है।

केवल फैशनके लिए वस्त्र नहीं पहिनने चाहिये और न ऐसी वेशभूषा बनानी चाहिये, जो आपको किसी वस्तुका विज्ञापक मसखरा जैसा अथवा लफंगा-गुण्डा सूचित करे।

आजकल तो स्त्रियोंकी रंग-बिरंगी साड़ियों जैसे वस्त्र पहिननेका छिछोरापन प्रचलित हो गया है। पुरुष कभी तो स्त्रियोंकी साड़ीकी ही लुंगी पहिन लेते हैं अथवा वैसी ही छपी कमीज (बुश-शर्ट) पहनते हैं।

युवकोंमें अपनेको लड़कियों जैसी वेश-भूषा बनानेका प्रचलन बढ़ता जाता है और लड़कियों, स्त्रियोंमें अंग-प्रदर्शनकी उमंग बढ़ गयी है। यह पाश्चात्य सभ्यताका अन्धानुकरण शालीनता रहित तो है ही, अनेक दूसरे अपराधोंको उत्तेजित करता है।

पाश्चात्य सभ्यतामें— आप उसके चाहे जितने बड़े प्रशंसक हों, नारी-स्वातन्त्र्यकी धुनने नारीको लगभग निराश्रित और सदा कामुका दिखलानेको विवश कर दिया है। वहाँ कन्याको अपने शारीरिक आकर्षणके द्वारा ही दूसरे वर्गको आकर्षित करके पति प्राप्त करना है।

पति प्राप्त करके भी वह निश्चिन्त नहीं है। वहाँ दाम्पत्य जीवन सदा विवाह-विच्छेदकी आशंकासे ग्रस्त है। फलतः नारी वहाँ अपनेको कामुका

(सेक्स) दिखलाते रहनेका भरपूर प्रयास करती रहती है । उसे पतिको भी अपने दैहिक आकर्षणसे ही अपने प्रति आकर्षित किये रहना है ।

भोग एवं अर्थ प्रधान पाश्चात्य संस्कृतिमें बाहरी चाकचिक्य बहुत है; किन्तु आन्तरिक घोर अशान्तिसे जीवन ग्रस्त है । अर्थोपार्जनकी बहुत अधिक चिन्ता-व्यस्तता और प्राप्त अर्थका जो उपभोग है, वह भी कोई बहुत लाभदायक नहीं है ।

मानवताके पतनकी सीमा भी सोच पाना कठिन है । व्यक्ति और समूह ही नहीं, पूरे देश ऐसे हैं जिनकी आयका मुख्य साधन जुआ या अपने यहाँ नारी-सहवासका खुला प्रदर्शन है । कई देशोंने तो विवाह-प्रथा ही त्याग दी है । अवैध सन्तानोत्पादनको वहाँ प्रोत्साहन दिया जाता है ।

जिस सभ्यताके विश्वमें विस्तारके कारण पूरे देश ऐसे बन गये हैं और कोई उन्हें बुरा नहीं मानता, भारतामें उस सभ्यताका विस्तार, उसे अपनाया जाना कितनी गिरी अवस्था है, कैसे सोचा जा सकता है ।

आजके युवक अपनेको वीटल (गुबरैला) और हिप्पी (एक अत्यधिक गन्दा अमेरिकन सुअर) कहने और प्रगट करनेमें गौरव मानने लगे हैं । अतः उनमें अपराध करनेकी मनोवृत्तिका पनपना-वढ़ना सहज हो गया है ।

इस प्रवृत्तिका परिणाम निरन्तर अशान्ति है । यदि आप चाहते हैं कि जीवनमें-मनमें शान्ति आवे तो आपको संयम-सदाचारका पालन करना चाहिये और दूसरोंकी दृष्टिमें भी अपनी वेश-भूषामें शालीन दिखना चाहिये ।

कन्हाईको आप अपना भी बनाना चाहते हैं और वेशभूषासे अत्यन्त राजसिक तामसिक दीखते हैं तो यह भोला गोप-बालक आपके समीप फटकेगा ?

आप वैष्णव वेशभूषा ही अपना लें, यह मैं आग्रह नहीं करता; किन्तु यह बात विचारणीय तो है ही कि आजके सबसे समुन्नत अमेरिकाके कई लाख लोग एक अकिंचन प्राय बंगाली साधुकी प्रेरणासे क्यों वैष्णव वेश-भूषामें रहने लगे और खुली सड़कोंपर भगवन्नामका उद्दाम कीर्तन करते निकलने लगे ।

उनमें न सब अपठित हैं और न दरिद्र । अनेक उनमें उच्च शिक्षित हैं । प्रायः सब शिक्षित हैं और अनेक बहुत सम्पन्न घरोंके हैं । उन्होंने सब व्यसन-चाय तक त्याग दिया और भारतीय वैष्णवकी वेश-भूषा, आचार,

व्यवहार अपना लिया । क्या कोई अकारण किसी ऐसे विदेशी समाजकी वेश-भूषा एवं आचार केवल कौतूहलवश अथवा किसीके बहकावेमें आकर स्थायी रूपसे अपना लेगा, जो समाज उस अपनाने वालोंकी अपेक्षा दरिद्र पिछड़ा हुआ माना जाता है ?

यह परिवर्तन हुआ है, श्रीकृष्णके आकर्षणके कारण । श्रीकृष्णकी प्रीति, श्रीकृष्णकी प्राप्ति-कामनाने उन लाखों लोगोंसे यह सब कराया है ।

आप भारतीय हैं; किन्तु क्षमा करें, अंग्रेजीके उच्च शिक्षित तो शरीरसे भारतीय होकर भी मनसे अंग्रेज भी नहीं बन सके । मनसे उनका अनुकरण करने वाले दासमात्र हैं । उनकी वेशभूषा, भाषा-व्यवहारमें पाश्चात्य अनुकरण तो है ही, वे प्रायः अंग्रेजीमें सोचते और हिन्दी बोलते हैं तो उस अंग्रेजीमें किये चिन्तनका हिन्दी अनुवाद करते हैं ।

कन्हाई यदि ऐसे लोगोंसे भड़कता है तो आप इस भोले बालकको दोष नहीं दे सकते । यह गाँवका सीधा गोपकुमार ऐसे सुसभ्य लोगोंको कुतूहलपूर्वक दूरसे भले देख लेता रहे, इनके समीप जाना इसे कैसे रुचेगा ?

बात बहुत सीधी है, किन्तु जो बात पृथ्वीके ठीक दूसरी ओर रहने वाले सुसभ्य लोगोंकी समझमें आ गयी और उन्होंने सिर घुटवाकर बड़ी चोटी रखनी, कण्ठी-तिलकवाला वेश बनाना प्रारम्भ कर दिया, वही बात भारतके विद्वन्मन्य लोगोंके सिरमें नहीं आ रही है और यहाँके युवक तो चोटी रखना प्रायः छोड़ ही चुके हैं । अवश्य उन्होंने रूखे, अस्त व्यस्त प्रेतोंके समान केश रखनेका शौक अपना लिया है ।

आपको कन्हाईसे परिचय करना है तो भले आप कार्यालयमें भी समाजमें प्रचलनकी विवशता वश कोई वेश बनाये रहें; किन्तु घरमें तो ऐसी वेशभूषा रखें कि यह गोपकुमार जीभ दिखाकर भागे नहीं, आपके समीप आनेका भी कभी मन करे ।



९. आपका चिन्तन

आप चिन्तन क्या करते हो ? जब आप अकेले होते हो, किसी आवश्यक काममें नहीं लगे होते और किसी आवश्यक कामको सुलझानेकी चिन्ता नहीं होती, तो आप क्या सोचते रहते हो ? यही कसौटी है जो बतलाती है कि आपके चित्तका वास्तविक स्वरूप क्या है । आपका आन्तरिक आकर्षण किधर है । यदि वह वाञ्छनीय न लगता हो तो उसे प्रयत्नपूर्वक बदलना आवश्यक है ।

श्रीरामचरितमानसकी प्रसिद्ध प्रार्थना है—

कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम ।
तिमि रघुनाथ निरन्तर, प्रिय लागहु मोहि राम ।।

रा.च.मान. ७।१३०

कामुक पुरुष बिना प्रयोजन भी स्त्रियोंकी चर्चा और चिन्तन करता रहता है । लोभी व्यक्तिकी चर्चा और चिन्तनका केन्द्र धन होता है ।

एक सन्त कहते थे— "निरन्तर किसी भी एक ही विषयका चिन्तन व्यावहारिक नहीं है; किन्तु तुम्हारे मनका मुख्यालय भगवान् होना चाहिये मन इधर-उधरसे घूम-भटककर उन तक पहुँच जाया करे ।।"

मैंने कभी कहीं पढ़ा था कि अमेरिकामें चार या पाँच मनोवैज्ञानिकोंने एकबार भूखसे पीड़ित व्यक्तिकी मनोदशा ज्ञात करनेके लिए एक प्रयोग किया । वे सवेरेसे बिना खाये-पिये एक कमरेको बन्द करके एक साथ बैठ गये । उन्होंने निर्णय किया था कि हम परस्पर चाहे जो चर्चा करें; किन्तु भोजनकी चर्चा नहीं करेंगे ।

उनमें-से प्रत्येकने विभिन्न विषयोंकी चर्चा प्रारम्भ की । इतिहास, भूगोल, पुरातत्त्व, चिकित्सा, राजनीति आदि विभिन्न विषयोंकी चर्चा प्रारम्भ की जाती थी; किन्तु वह चर्चा घूम-फिरकर भोजनकी चर्चा बन जाती थी । वे प्रबुद्ध मनोवैज्ञानिक प्रयत्न करके भी वहाँ भोजन-चर्चासे इसलिए नहीं बच

सके, क्योंकि वे भूखे थे ।

कामुकमें काम-वासना भूखकी भाँति होती है और लोभीमें धन पानेकी असीम भूख होती है । इसीलिए उसका मन अनजानमें भी स्त्री या धनको केन्द्र बनाकर उसीके चारों ओर मंडराया करता है ।

आपका अगला जन्म कहाँ किस रूपमें होगा ? बहुत सीधा उत्तर है कि उस रूपमें होगा, जहाँ आजकल बराबर अटकता-भटकता रहता है । नये शरीरका निर्माण मनके अनुसार ही होता है । धन, भवन, भूमि आदिके चिन्तक बहुधा सर्प, वृक्ष तृणादि अथवा उन भवनोंमें रहनेवाले चूहे, छिपकली, मक्खी, मच्छर आदि हुआ करते हैं और स्त्री-चिन्तक प्रायः स्त्री होते हैं, फिर भले मानव स्त्री न होकर अपने कर्मानुसार कुत्ते, सुअर आदि पशु-पक्षी योनियोंमें मादा देह पावें ।

यह नियम आपको भयंकर लगता है ? यह तो बहुत उत्तम नियम है । श्रीकृष्णने जब रास-रात्रिके प्रारम्भमें अपने पास आयी गोपियोंको घर लौट जानेको कहा तो रुदन करती गोपियोंने उनसे कहा—

ध्यानेन याम पदयोः पदवीं सखे ते ।

भा० १०।२९।३५

'प्रिय ! तुम हमें लौट जानेको तो कहते हो; किन्तु हम लौट जाने आयी नहीं हैं । तुम हमें स्वीकार नहीं करोगे तो हम तुम्हारा चिन्तन करते-करते शरीर त्याग देंगी और तब स्वयं तुमको प्राप्त कर लेंगी । तब तुम हमें रोक नहीं सकोगे ।'

आप अपने चिन्तनका केन्द्र कन्हाईको बना सको तो यह भुवन-मोहन आपका बन गया । फिर यह निश्चित हो गया कि यह आपको मिलेगा ही । इसलिए एक भावुक भक्त प्रार्थना करते हैं—

कृष्ण ! त्वदीय पद-पंकज पञ्जरान्ते
अद्यैव मे विशतु मानस राजहंसः ।
प्राण-प्रयाण-समये कफ-वात-पित्तैः
कण्ठावरोधन-विधौ स्मरणं कुतस्ते ॥

'श्रीकृष्ण ! तुम्हारे चरण-कमल रूपी पिंजड़ेमें मेरा मन-राजहंस अभी आज ही प्रवेश कर जाय । अन्यथा प्राण-निकलते समय कफ, वायु या पित्तसे जब दम घुटने लगेगा तो तुम्हारा स्मरण कैसे सम्भव है ।'

मृत्यु कब आ जायेगी, इसका तो कोई समय निश्चित नहीं है । मरते समय मनुष्य जान-बूझकर कुछ करनेकी स्थितिमें कदाचित ही होता है । अतः कन्हाईको अपने चिन्तनका केन्द्र तो अभी बनाइये ।

यह कैसे हो ? जब आप यह पूछते हो तो लगता है कि आप भक्तिके मार्गको भी भोग बनाकर चल रहे हो । कन्हाईका भी ध्यान ऐसे करनेका प्रयत्न कर रहे हो जैसे योगका साधक आसनपर बैठकर, रीढ़की हड्डी सीधी करके, नेत्र बन्द करके ध्यान करते हैं । ऐसे आप अपने मनपर बल डालकर इस परम चंचल गोप-बालकको जकड़कर खड़ा या बैठा रखना चाहोगे तो यह खड़ा रहेगा या भाग जायेगा ?

आप अपने पुत्र, स्त्री, भाई, मित्र, व्यापार-व्यवहारका चिन्तन करते हो तो आसनपर बैठकर नेत्र बन्द करके रीढ़की हड्डी सीधी करते हो ? जब इन चिन्तनोंमें ऐसा नहीं करते तो कन्हाईके ही चिन्तनमें यह क्यों आवश्यक है ?

कन्हाई छोटा-सा बालक है; किन्तु बहुत नटखट है । अनेक रूप बनानेमें निपुण है । आपने बालक देखे हैं । खेलते, दौड़ते, ताली-बजाते बालक देखे हैं । यही सब कन्हाई कभी अकेले और कभी अपने सखाओंके साथ किया करता है ।

'इस समय नन्द-नन्दन क्या कर रहा होगा ?' अपने मनसे पूछो और जब आवश्यक काममें मन न लगा हो तो चलते-फिरते, उठे-बैठे, खाते-पीते सोचने लगो । ऋतु और समयके अनुसार ही तो यह श्यामसुन्दर भी व्यवहार करेगा । आप इसके सम्बन्धमें सोचते रहना– कल्पना करते रहना अपना स्वभाव बनाओ ।

कल्पनाके नामसे चौंकिये मत । आप बड़े दार्शनिक बनते हों तो यह बतावें कि यह पूरा दृश्य-प्रपञ्च मनकी कल्पना है या नहीं ? कल्पनाने यह जगत खड़ा किया है, अतः कृष्णकी कल्पना आपको जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्त

कर देगी ।

एक महात्माने एक बार मुझसे कहा– 'तुम ब्रह्म चिन्तनकी बात छोड़कर यह कोरी कल्पना करते रहनेकी बात क्यों किया करते हो ?'

मैंने उनसे पूछा– "स्वामी जी ! आप जिस ब्रह्मकी बात कह रहे हो, वह मनका विषय है ? मन या बुद्धिकी वृत्ति बना करता है ?"

किसी वेदान्तके विद्वानसे पूछ देखिये । उसे यही कहना पड़ेगा ।

संसुप्तवत् शून्यवदप्रतर्क्यं तन्मूलभूतं पदमामनन्ति ।

भा. १२।४।२१

'वह मूलभूत पद-स्वरूप आकाशके समान, शून्यके समान, कल्पनामें न आनेवाला श्रुतियोंने कहा है ।'

अब आकाशमें, शून्यमें अपने मन या बुद्धिको भटकाइये या निष्क्रिय करनेमें सिर मारिये । जो भी करेंगे, वह मन या बुद्धिका विषय होनेसे कल्पना होगा । श्रुति उसे भी 'नेति– यह नहीं' कह देगी ?

भावुक श्रद्धालु भक्त श्रीकृष्णके सम्बन्धकी कल्पनाको भावना कहते हैं । यह भगवान् सम्बन्धी भावना भव-रोग निवारिका परमानन्द-दायिका-परमौषधि है ।

आप सूरदास, तुलसीदास प्रभृति भक्त सन्तोंके पद देखिये, उसमें उन्होंने लीला-भावना की है । आप अपने मनमें कन्हाईकी चपल क्रीड़ाओंकी भावना कीजिये । भावना करते रहनेका अपने मनका स्वभाव बना लीजिये ।

एक सज्जनको कन्हाईका ध्यान करनेको कहा गया– "मनसे एक कटोरीमें थोड़ी किसमिस धोकर साफ करके रख लीजिए और सामने बैठे कन्हाईके मुखमें एक-एक करके अपने हाथसे दीजिये । मनसे ही उसके हिलते मुखको देखते रहिये ।"

दूसरे दिन उन्होंने तो नहीं; किन्तु उनकी पुत्रीने कहा– 'आपका गोपाल तो मुख ही नहीं खोलता । वह हाथ फैलाता है कि इसपर दो और झपट्टा मारता है ।"

यह गोपकुमार है । वनमें सखाओंके साथ गायें चराता घूमता है । कभी आँधी आती है, कभी वर्षा आती है । कभी गायें चारों ओरसे इसको सहलानेके लिए घेर लेती हैं । कभी आँधीमें दोनों हाथोंसे नेत्र बन्द करके, पटुका सिरपर लेपटकर, किसी सखाके साथ सिरसे सिर सटाकर बैठ जाता है । कभी वर्षा बड़ी बूंदोंकी तीव्र हुई तो गायें, बछड़े भागकर वृक्षोंके नीचे सटकर खड़े होते हैं और गोपबालकोंके साथ यह भी किसी सघन वृक्षकी ओर भागता है ।

अभी नन्हीं फुहियाँ बरसती हों तो दोनों हाथ फैलाकर दूसरे बालकोंके साथ गोल-गोल घूमता है । इसकी अलकोंपर हीरक-कणियोंके समान नन्हें सीकर अटकते-बढ़ते रहते हैं ।

कभी वर्षा हो चुकनेपर भूमिमें पानीमें पैर से छपाछप करता दौड़ता-खेलता रहता है ।

प्रायः नित्य सायंकाल जब वनसे गायोंको लौटाकर उनके पीछे-पीछे सखाओंके साथ लौटता है, कभी वंशी बजाता, कभी नाचता या ताली बजाता तो इसकी अलकें, पलकें, वनमाला, पूरे शरीरपर गायोंके खुरोंसे उड़ती धूलि बढ़ती ही जाती है । भावुक कवि गा उठता है—

गोरज विराजै भाल लहलही वनमाल,
आगे गैयां पीछे ग्वाल आवै व्रजराज री ।

इसकी हिलती अलकें, लहराती वनमाला या मयूरपिच्छ, उठते-गिरते लाल-लाल सुकुमार चरण, मुस्कराते ओष्ठ, छोटा-सा मुख, हँसते समय दमकती दन्तावली— आप चिन्तन करने लगें तो एक-एक चेष्टांका चिन्तन करते रहें ।

आजुजनी बछरी लिए गोद मैं
साँझ समय वनते घर आवत ।
गाय हुंकारत साथ लगी
तेहि ताकि सनेह समेत दिखावत ।।

वनमें आज एक गाय ब्याह गयी । उसने बछड़ी दिया । इसे बछड़ी

इतनी प्यारी लगी कि दूसरे किसी सखाको उठाने नहीं दिया, स्वयं गोदमें उठा लिया। अन्ततः वनमें अंधेरा होने तक न बालक रुक सकते थे और न नवजात बछड़ी छोड़ सकते थे। बछड़ी गोदमें उठायी तो उसकी माता गाय साथमें बार-बार हुंकार करते साथ लग गयी। यह उस गायको पुचकारता जाता है, बछड़ी उसे दिखाता जाता है। गाय कभी इसे सूंघती है और कभी अपनी बछड़ी को।

कन्हाईके चिन्तनकी तो परम्परा अनन्त है। 'मन नहीं लगता' कहनेका अवसर ही नहीं आवेगा। आप इसके उड़ते पटुके, फहराते मयूर-पिच्छको देखिये! आँधीमें उड़ रही अलकोंमें मन लगने दीजिये किसी वृक्षकी ओटमें तनेसे चिपककर छिपे खड़े और तनिक-सा मुख निकालकर सखाओंकी ओर झाँकते इसे देखिये।

यह नटखट तो मुख बनाकर, दाँत दिखाकर कपियोंको चिढ़ाता है, नृत्य करते मयूरके सामने ठुमकता है या मेंढकके पास बैठकर उसके साथ फुदकता है। यह बछड़ेको ही नहीं, गोदमें चढ़ आये शशक या गिलहरीको सहलाता-पुचकारता है। इसेचुपचाप बैठना या खड़े रहना कहाँ आता है कि आप इसे स्थिर करके इसका ध्यान करेंगे।

जैसे वायुकी अपनी कोई गन्ध नहीं है, वह सुगन्धित अथवा दुर्गन्धित जैसे पदार्थको छूकर आवे, वैसी गन्धका होता है, वैसे ही आपका मन न अच्छा है, न बुरा। वह जैसे विषयको सोचने लगे, उस समय वैसा हो जाता है।

जैसे तेज नमक या मिर्च खाते-खाते वैसा ही पदार्थ प्रिय हो जाता है और उसे छोड़ना हो तो कुछ दिन मनको बलपूर्वक दबाकर, दूसरे प्रकारका आहार लेते रहना पड़ता है, फिर दूसरे प्रकारका आहार प्रिय लगने लगता है ऐसे ही आपके मनको दीर्घकाल तक साँसारिक विषयोंके चिन्तनका अभ्यास हो गया है। अब बलपूर्वक मनको बार-बार उधरसे हटाकर श्रीकृष्णके चिन्तनमें लगाना है। ऐसा ही साहित्य पढ़ें ऐसी ही चर्चा सुनें तथा करें, जिससे श्रीकृष्ण-चिन्तन बढ़े।

कृष्णका अर्थ है आकर्षणकी सत्ता या आनन्दकी सत्ता। आप कन्हाईका चिन्तन करने लगें तो यह स्वयं आपके चित्तको अपनी ओर खींच लेगा।

इसका तो चितचोर, नवनीतचोर नाम ही है ।

आप जानते हैं कि स्वाभाविक ढंगसे बिना प्रयत्न आपका चित्त बार-बार जो चिन्तन करता है, मरते समय भी वैसा ही चिन्तन होनेकी बहुत अधिक सम्भावना है और यह नियम है कि मनुष्य मरते समय जो चिन्तन करते मरता है, वैसा ही देह या लोक पाता है ।[१]

आप अन्ततः आगे वृक्ष, पत्थर, पशु-पक्षी तो नहीं होना चाहिये । संसार तथा सांसारिक पदार्थोंका चिन्तन तो आपको यही देनेवाला है ।

श्रीकृष्णका कुछ देरको आप ध्यान करते हैं, सो करते रहिये; किन्तु इस कन्हाईकी चर्चा-चिन्तनको अपना स्वभाव बना लीजिये । तब आपकी इससे प्रीति हो जायेगी । यह आपको अपना लगेगा ।

एक लड़कीका पत्र आया— 'इस शीतकालमें अमुक चित्र देखती हूँ तो बड़ा अजीब लगता है । उसमें नंगे वैठे हैं । जी करता है कि शाल उढ़ा दूँ ।'

चित्र केवल चित्र है । उसमें शरीरपर केवल पटुका हो या कम्बल भी हो, अन्तर क्या पड़ता है । पढ़ी-लिखी समझदार लड़की इसे न समझती हो, ऐसा तो नहीं 'है', किन्तु मन्दिरोंमें श्रीमूर्तिका ऋतुके अनुसार श्रृंगार तो होता ही है, लोग अपने यहाँके पूजा-चित्रोंको भी वस्त्र धारण कराते हैं । श्रीकृष्ण-जन्मस्थानके गर्भगृहमें जो चित्र पूजा स्थानपर है, उसे वस्त्रसे सजाया जाता है ।

यह इसलिए नहीं है कि पूजा करने वालोंको चित्रको सर्दी या गर्मी लगनेका भ्रम है । यह इसलिए होता है कि वह जिसका चित्र है, उसने अर्चकके चित्तको अपनी ओर आकर्षित कर लिया है । फलतः उसके चित्रको भी सजीव मानकर व्यवहार करनेकी रुचि हो गयी है ।

आपमें ऐसी रुचि नहीं बनी है तो कृत्रिम व्यवहार करनेकी आवश्यकता नहीं है; किन्तु चिन्तनकी धाराको तो मोड़ना ही पड़ेगा यदि इस संसारके आवागमनमें ही पड़े रहनेका निश्चय आपने न कर लिया हो । यह निश्चय करना नहीं पड़ता । निश्चय तो इससे छूटनेका करना पड़ता है और ऐसा

---

१. 'कर्म-रहस्य' में यह नियम विस्तारपूर्वक समझाया गया है ।

निश्चय हो जानेपर ही किसी भी आध्यात्मिक साधनमें स्थिरता आती है ।

दूसरे साधनोंकी बात मैं नहीं करता । जिनको जो साधन प्रिय लगें, उन्हें वही करने चाहिये और उनके विषयकी जानकारी अपने उपदेष्टा गुरुसे प्राप्त करनी चाहिये; क्योंकि बिना योग्य अनुभवी मार्ग-दर्शकके स्वयंका प्रयत्न बहुत कम ही प्रगति करता है ।

आपको कन्हाईको अपनानेकी, हृदयमें लानेकी रुचि हो तो इसके चिन्तनको बढ़ाना चाहिये । इसका चिन्तन आपके चित्तका सहज स्वभाव बन जाय, यही आपका परम पुरुषार्थ है ।१



---

१. 'राम-श्यामकी झाँकी' और 'सखाओंका कन्हैया' में ऐसी अनेक झाँकियाँ हैं ।

१०. आपका परिवार-परिकर

आपका परिवार एवं परिकर कैसा है ? परिवारका अर्थ आप समझते हैं । भारतीय परिवारमें केवल पति-पत्नी और उनकी सन्तान ही नहीं होतीं । भाई, भतीजे, चाचा-ताऊ, दादा-दादी, उनकी सन्तान आदि भी होती हैं, यह परिवार तब तक एक परिवार बना रहता है, जब तक साम्पत्तिक विभाजन नहीं हो जाता ।

परिकरमें आपके मित्र, सम्बन्धी और सेवक– सब आ जाते हैं । इस परिवार और परिकरसे पृथक जो आपका व्यक्तित्व है, वह बराबर परिवार एवं परिकरोंसे प्रभावित होता रहता है । इन सबका आपपर कुछ न कुछ अधिकार होता है और आपका इनपर ।

आप रुष्ट हों या तुष्ट, अनुकूल हों या प्रतिकूल, परिवारके सदस्योंको तो बदल सकते नहीं । बहुत हुआ तो उससे एक सीमा तक उदासीन हो सकते हैं; किन्तु एक छोटी सीमा तक ही ।

परिकरोंको भी परिवर्तित करनेमें आप कदाचित ही पूरे स्वतन्त्र होते हैं । अवश्य दृढ़ निश्चय हो तो मित्र-मण्डल बदल सकते हैं; किन्तु सेवकोंमें केवल निजी सेवक बदले जा सकते हैं । पारिवारिक सेवकोंको बदलना कभी शक्य नहीं भी हो सकता ।

परिवार और परिकर भी कभी सर्वथा ही प्रतिकूल हो सकता है । सन्तश्रेष्ठ तुकारामजी तथा टाल्स्टॉयकी पत्नी बहुत कर्कशा, प्रतिकूल थीं, प्रह्लादजीके पिता तो इतने प्रतिकूल कि पुत्रको मार ही देनेका पक्का निश्चय कर लिया उन्होंने । मीराबाईका परिवारमें इतना विरोध हुआ कि मीराको विष तक दिया गया । अन्तमें मीराको गृह-त्यागके लिए विवश होना पड़ा ।

किसी भी प्राणीको परिवार पूर्वजन्मके कर्म-सम्बन्धके कारण प्राप्त होता है । पुत्र ही दो प्रकारके होते हैं, ऋणानुबन्धी अर्थात् जिन्होंने पूर्वजन्ममें आपसे ऋष लिया है, सेवा करायी है । वे इस जन्ममें कमायेंगे, सेवा करेंगे, इस प्रकार अपना ऋण चुकायेंगे ।

दूसरे धनानुबन्धी अर्थात् जिनसे आपने पूर्वजन्ममें ऋण लिया है, जिन्हें किसी प्रकार सताया है । वे अपना ऋण वसूल करने और अपना बदला लेने आपके यहाँ आये हैं । वे आपका धन व्यय करायेंगे, आपको सतायेंगे ।

केवल पुत्र ही ऐसे नहीं होते माता-पिता भाई-सम्बन्धी और पति या पत्नी भी ऐसी हो सकती है । मित्रों, सेवकोंमें भी दोनों प्रकारके लोग हो सकते हैं । अतः वे तो अपने पूर्वकर्मानुबन्धके अनुसार ही आपसे व्यवहार करेंगे ।

ऐसी अवस्थामें यदि सर्वथा प्रतिकूल ही परिस्थिति मिल जाय तो क्या करना चाहिये ? अन्ततः पुत्रका पिताके प्रति स्त्रीका पतिके प्रति कर्तव्यकी सीमा क्या है ?

यहाँ एक स्पष्ट सत्य सदा स्मरण रखने योग्य है कि जीव न किसीका पुत्र है– न पिता । न स्त्री है– न पति । जीवका नित्य सम्बन्ध तो भगवान्से ही है । नरके नित्य सखा नारायण ही हैं । अतः सबका सर्वोच्च एवं प्रथम कर्तव्य उन नारायणके प्रति, अरे, इस कन्हाईके प्रति है । इस कर्तव्यमें पड़नेवाली किसीकी कोई बाधा स्वीकार करने योग्य नहीं है ।

माता-पिताने शरीर दिया है, शरीरका लालन-पालन किया है, अतः शरीर उनका है । कन्याका शरीर वे जिसे दान करते हैं, उस पतिका हो जाता है; किन्तु शरीर ही हो जाता है । यह उसकी दुर्बलता ही है कि शरीरके साथ मन-हृदय भी दे बैठती है । मन तो कन्हाईका, उसीको दिया जाना चाहिए ।

एक बार एक दम्पत्ति मेरे समीप आये । उनका विवाह हुए थोड़ा ही समय हुआ था । विवाहसे पूर्व वह लड़की तथा उसके माता पिता मेरे समीप प्रायः आते रहते थे । अतः मैंने उसके पतिसे पूछा– "यह तुम्हारी सेवा तो ठीक करती है ?"

उन्होंने उत्तर दिया– "इनकी सेवामें तो कोई कमी नहीं है; किन्तु आप बड़े हैं– इतना ही समझ लें कि मुझे पत्नी नहीं मिली है, रबड़की पुतली मिली है ।"

सच कहूँ, मेरा चित्त प्रसन्न हो गया । मैंने उन्हें समझाया– "पिता पुत्रीका कन्यादान करता है तो केवल उसके शरीरका ही दान करता है । यही

कर सकता है । यह शरीर तुम्हें मिला है । हृदय तो पिताका है नहीं, वह यदि कोई परमात्माको दे सकता है तो वह धन्य है । उसने हृदयके ठीक स्वामीको उसे दिया । उसका सम्पर्क तो दूसरेको भी धन्य ही करने वाला बनेगा ।"

वे बुद्धिमान हैं । बात समझमें आ गयी और दोनों परमार्थ-पथके साथी हो गये । मान लीजिये कि वे विरोध करते तो क्या होता ? दोनोंका जीवन दुःखी रहता । कन्हाई तो पकड़कर-अपनाकर छोड़ता है नहीं, अतः उसकी ओर जाने वाला कदाचित दबता भी दीखेगा तो वह तात्कालिक ही होगा, स्थायी नहीं होगा । उसे विमुख करनेका आग्रह करने वालेको ही विफल होना है ।

श्रीरामचरितमानस तो इस सम्बन्धमें बहुत अधिक स्पष्ट है—

जरउ सो सम्पति सदन सुख, सहृद माता-पितु भाइ ।
सम्मुख होत जो राम पद करै, न सहस सहाइ ।।

रा.च.मा. २।१८५

उन माता-पिता, सुहृद, भाई बन्धुओंमें, घरेलू सुखमें आग लगे, वे भस्म हो जायें, जो श्रीरामके चरणोंके सम्मुख जानेमें सहर्ष सहायता नहीं करते ।

वे विरोध न करके उदासीन रहने वाले हों तो भी अपनाये रहने योग्य नहीं हैं । अपनाये रहने योग्य तभी हैं, जब सहर्ष सहायता करने वाले हों ।

कहते हैं कि मीराबाईने गोस्वामी तुलसीदासको पत्र लिखकर अपने लिए सम्मति मांगी थी, तो गोस्वामीजीने उत्तरमें एक पद लिख भेजा था ।

जाके प्रिय न राम-वैदेही ।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही ।।
तज्यो पिता प्रह्लाद, बिभीषन बन्धु, भरत महतारी ।
बलि गुरु तज्यो कंत ब्रज-बनितन्हि, भये मुद-मंगलकारी ।।
नाते नेह रामसों मनिमत सुहृद सुसेब्य जहाँ लौं ।
अञ्जन कहा आँखि जेहि फूटै, बहुतक कहौं कहाँ लौं ।।

तुलसी सो सब भाँति परम हित पूज्य प्रानतें प्यारौ ।
जासों होय सनेह राम-पद, एतो मतो हमारो ॥

विनय-पत्रिका– १७४

विनय-पत्रिकाका यह पद बहुत स्पष्ट कहता है कि विरोध करनेकी तो बात छोड़ो 'जाके प्रिय न राम बैदेही' वे 'जद्यपि परम सनेही' हों तो भी 'तजिये ताहि कोटि बैरी सम ।'

आदर्श तो यही हैं; किन्तु जीवन इतना सरल नहीं है कि उसमें सरलतासे आदर्श अपनाये जा सकें । अतः कोई मध्यम-मार्ग निकाला जाना चाहिये ।

एक सीधा सरल मार्ग है कि आप कन्हाईको भी अपना कोई आत्मीय बना लो । मनसे मान लो; किन्तु कोई ऐसा आत्मीय जिसकी आपके जीवनमें सचमुच माँग हो । जिसके चार पुत्र हैं, एक भी है, वह यदि इसे पुत्र मानेगा तो उसकी मान्यतामें सच्चाई, गहराई आनेकी सम्भावना कम रहेगी । उसका हार्दिक प्यार अपने लौकिक पुत्रपर ही अधिक उमड़ेगा । अवश्य यदि उसका लौकिक पुत्र उसे कष्ट दे रहा हो तो उसका अनुराग कन्हाईपर उमड़ सकता है ।

अनेक और सम्बन्ध हैं जो आपको जीवनमें अभीष्ट हैं और प्राप्त नहीं हैं । श्रीनामदेवजी तो भगवान् पाण्डूरंग (पंडरीनाथ-विट्ठल) को आई (मां) कहते-मानते थे ।

'त्वमेव माता च पिता त्वमेव ।'

यह नन्दनन्दन तो सर्वरूप है । इसलिए इसने पुरुष ही रहनेका कोई व्रत तो ले नहीं रखा है ।

गोस्वामी तुलसीदास श्रीरघुनाथजीके विनम्र सेवक हैं और सेवकके लिए अपना आग्रह शोभास्पद नहीं है । इसलिए वे कहते हैं–

तोहिं मोहिं नाते अनेक मानियै जो भावै ।

विनय-पत्रिका– ७९

लेकिन आपको जो प्रिय लगे, जो अत्यन्त आवश्यक लगे वह सम्बन्ध मान लीजिये । आपकी मान्यता सच्ची होगी तो कन्हाई उसे मान ही लेगा।

आपका पुत्र या भाई असत् पुरुष निकल जाय तो ? अन्ततः संसारमें जो अत्याचारी, हिंसक, गुण्डे, हत्यारे हैं, वे किसीके पुत्र, भाई आदि हैं या नहीं ? उन्हें निभानेका मन न हो तो भी निभाना पड़ता है । कन्हाईको जब आप अपना कोई आत्मीय मान लोगे तो दूसरोंकी प्रतिकूलताके मध्यमें रहते भी इसे अपनाये रहनेका आन्तरिक बल आपको प्राप्त होगा ।

अपना लिये जानेपर कन्हाई आपको आन्तरिक बल तथा स्पष्ट सहायता देता रहेगा । मैं एक महिलाको जानता हूँ । वे भगवद्भक्त परिवारकी कन्या हैं और एक प्रतिष्ठित सम्पन्न परिवारमें ब्याही गयी हैं । पति सुशिक्षित प्रसिद्ध व्यक्ति हैं; किन्तु उनकी आस्था निरीश्वरवादमें है । सम्भव है कि पत्नीका रूप-रंग उन्हें पसन्द न आया हो । वे महिला एक सीधी, प्राचीन भारतीय नारी जैसी हैं । पति महोदयको कोई आधुनिका आवश्यक लगती थी । अतः उन्होंने पत्नीको प्रारम्भसे प्रताड़ित करना प्रारम्भ किया ।

पत्नीका पूजा-पाठ तो वे भला कैसे सह पाते । उस विचारीने विवश होकर सब छोड़ दिया; किन्तु जो हृदयमें बस गया, वह छोड़े तो छूटा नहीं करता । वह झाड़ू लगाते, बर्तन मलते, घरके दूसरे काम करते जप करती थी । इससे भी पति महोदय (उन्हें पतिदेव कहनेको जी नहीं करता) उसे पीटते थे यह कहकर– 'यह बराबर ओष्ठ क्यों हिलाती रहती है ? इस पिछड़ेपनको छोड़ती क्यों नहीं है ?'

अन्ततः पतिगृह त्यागकर उसे अनेक वर्षों तक पिताके ही घर रहना पड़ा । लेकिन अन्तमें वे पति महोदय पत्नीको लिवा ले गये । उसके संग-साथके कारण मन्दिरोंमें और सत्संगमें भी जाने लगे । भले उनका अपना असंयमित जीवन संयममें न आया हो; किन्तु पत्नीको उत्पीड़ित करना तो छूट ही गया । उसे आवश्यक सुविधा प्राप्त होने लगी ।

उन महिलाकी निष्ठा देखकर लगता है कि कन्हाई नहीं चाहता कि वैसे पुरुषके प्रति उनकी आसक्ति बने, अतः उन महोदयमें केवल काम चलाऊ

परिवर्तन हुआ है । वे समझने लगे हैं कि पत्नीकी उपेक्षा करनेसे उनके सामाजिक सम्मानको आघात लगता है ।

सठ सुधरहिं सतसंगति पाई ।
पास परस कुधातु सुहाई ॥

रा.च.मा. १-२-९

लेकिन ऐसे भी लोग होते हैं, जिनका सुधार सम्भव ही नहीं है । उनमें केवल तात्कालिक परिवर्तन मात्र होता है । श्रीरामचरितमानसके कर्ता ऐसे लोगोंको खल कहते हैं—

खलउ करहिं भल पाइ सुसंगू ।
मिटइ न मलिन सुभाउ अभंगू ॥

रा.च.मा. १-६-४

प्रह्लाद जैसे लोकोत्तर भगवन्निष्ठका संग उनके पिता दैत्यराज हिरण्यकशिपुका स्वभाव-परिवर्तन नहीं कर सका । अतः स्वभाव-परिवर्तन हो ही जायेगा, यह तो निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता; किन्तु निश्चयपूर्वक यह कहा जा सकता है कि कन्हाईको अपनाने वालेके अन्तरमें प्रबलतम विरोधोंको झेल लेनेकी शक्ति आ जाती है और यह शरणागत वत्सल उसे सम्पूर्ण परिस्थितियोंमें सम्हाल अवश्य लेता है ।

आप अपने परिवार-परिकर तक ही सोचकर बस मत करो । उसमें कन्हाईकी भी गणना करो । इसे भी आत्मीयोंमें सम्मिलित करो ।

मैं एक परिचितकी बात करता हूँ । वे अपने उत्तर-जीवनमें अकेले तीर्थवास करने लगे थे; किन्तु कोई उनसे कहता— 'आप यहाँ अकेले रहते हैं ?' तो चिढ़ जाते थे । कहते थे— 'अकेले तुम रहते होगे । यहाँ मैं रहता हूँ और मेरे गिरधरनलाल रहते हैं ।'

उनका कहना था— 'मनुष्यके आसपास दूसरा मनुष्य न हो, पशु-पक्षी, कीड़े-चींटी चाहे जितने हों, वह बेचारा तो अकेला ही है । ये दो पैरवाले लोग सगे-सम्बन्धी भले कहे जायें, इनसे कहीं अकेलापन भंग होता है ।'

वे सम्पन्न थे । रेलसे यात्रा करते थे तो प्रथम श्रेणीमें दो सीटोंका

आरक्षण करवाते थे । एकपर वे और एकपर उनके 'श्रीगिरिधरनलालजी'

लेकिन यह तो हुई परिकर-परिवारके या उसके किसी सदस्यके प्रतिकूल होनेकी बात । सदा यह प्रतिकूल परिस्थिति ही तो नहीं मिला करती । अनुकूल परिस्थिति भी मिलती है और प्रायः मिलती है । जब अनुकूल परिस्थिति मिलती है तो भगवत्स्नेह १+१ = २ के हिसाबसे द्विगुण ही नहीं होता । वह एक और एक ग्यारहके समान हो जाता है ।

नरसी मेहता, विद्यापति, एकनाथजी जैसोंको पाकर पूरा परिवार अनायास कृतार्थ हो गया । आज भी ऐसे अनेक परिवार हैं जिनमें एक व्यक्तिके कारण परिवारके लोग भगवान्‌की ओर बढ़नेकी प्रेरणा पाते रहते हैं ।

ऐसे व्यक्ति परिवार-प्रमुख ही हों, यह आवश्यक नहीं है । एक मित्र हैं, सम्पन्न परिवारके हैं । तीन भाइयोंमें सबसे छोटे हैं । उपार्जनमें प्रारम्भसे रुचि नहीं लेते । केवल भजन और सत्संग । होना तो यह चाहिये था कि वे परिवारमें उपेक्षित होते; किन्तु परिवारमें वे सबसे अधिक प्रतिष्ठित हैं । पिता और दोनों बड़े भाई उनका अत्यधिक आदर करते हैं । भतीजे जो पिताओंका अनुशासन नहीं मानते और अब उपार्जन करनेवाले हो गये हैं, उनकी उनके सामने अवज्ञा नहीं कर पाते ।

ऐसा अनुकूल परिवार सौभाग्यसे प्राप्त होता है, यह बात तो ठीक है; किन्तु ऐसा परिकर बनानेका प्रयत्न आप कर सकते हैं ।

यदि संयोगवश आपको सेवकोंमें कोई भगवद्भक्त मिल जाये तो उसकी कुछ त्रुटियोंको सहकर भी उसे उपनाये रहना उचित है ।

आपके आस-पास भगवद्-भजन एवं चर्चा करने वाले लोग भी होंगे । संसारमें सर्वथा निर्दोष कोई नहीं होता । अतः कुछ दोषोंकी उपेक्षा करके भी ऐसे लोगोंसे परिचय, मैत्री करनी चाहिये और उसका निर्वाह करना चाहिये ।

आपका परिवार-परिकर जितना कन्हाईके उन्मुख होगा, आपकी रुचि-प्रीति बढ़नेमें उतनी ही अधिक सहायता, सुविधा आपको प्राप्त होती रहेगी ।



११. आपका परिचय

आपका कुछ परिचय स्वयं प्रयत्नपूर्वक करते हैं, कुछ लोग आपसे प्रयत्न करके परिचय करते हैं और कुछ परिचय हो जाते हैं । इनमें भी कुछ परिचय प्रिय होते हैं, प्रगाढ़ हो जाते हैं । कुछ परिचित न चाहने पर भी गले पड़े रहते हैं । उनके साथ शिष्टाचार निभाना पड़ता है और कुछ परिचय होकर फिर समयके प्रवाहमें विस्मृत हो जाते हैं ।

इन लौकिक परिचयोंके अतिरिक्त आपका कोई अलौकिक व्यक्तित्व परिचित है ? चौंकिये मत, भूत-प्रेत, यक्षिणी-विनायक आदि अनेक लोग सिद्ध किये होते हैं; किन्तु एक अटल नियम है—

भूतानि यान्ति भूतेज्या ।

– गीता ९-२५

भूत-प्रेत, देव-पितर पूजक मरणोपरान्त उन्हींके सेवक बनते हैं । अतः यदि आपको भूत-प्रेतादि नहीं बनना है तो इन अलौकिक परिचितोंसे शीघ्र अपना पिण्ड छुड़ाइये ।

इन अलौक व्यक्तित्वोंसे पिण्ड छुड़ाना वैसे तो सरल नहीं है । ये जिसके साथ हो लेते हैं, उसे सरलतासे छोड़ते नहीं; किन्तु यदि आप कन्हाईको अपना लें और गीता या भागवतका पाठ नियमपूर्वक करने लगें तो ये अलौकिक शक्तियाँ स्वयं आपसे दूर रहने लगेंगी ।

अलौकिक परिचय एक और प्रकारका भी होता है और वह भव्य होता है । जैसे मैं रघुवंशी हूँ । अतः प्रातः जब भगवान् सूर्यको अर्घ्य देता हूँ तो मेरे लिए वह केवल नित्यकर्म नहीं होता । मैं उसे पितृ-वन्दन भी मानता हूँ ।

सूर्य पुत्र होनेके कारण यमराज मेरे सम्मान्य पूर्वपुरुष हैं और कन्हाईके नाते वे मेरे सम्बन्धी भी हैं; क्योंकि कन्हाईको मैं छोटा भाई कहता मानता हूँ । उसके सगे श्यालक यमराजका मैं सम्मान्य हुआ या नहीं ? अतः जब भी मृत्यु आवे, मुझे उससे भय नहीं लगता । मृत्युके देवताको पूर्वज होनेके

कारण मुझे स्नेह देना है और कन्हाईके नाते मेरा सम्मान करना है ।

आपके ऐसे अलौकिक परिचित, सम्बन्धी हैं या नहीं ? रघुवंशमें उत्पन्न होनेके कारण श्रीराघवेन्द्रका मैं शिशु और जन्म हुआ वाराणसी प्रदेशमें अतः विश्वनाथके घरका ।

आप अपनी ओरसे ऐसे सम्बन्धोंको पूरी दृढ़ता एवं सच्चाईसे सम्हाल लें तो दूसरी ओरसे वे सम्बन्ध विस्मृत नहीं किये जायेंगे, यह विश्वास रखिये ।

मामा प्रयागदासके परम सन्त होनेका कारण ही केवल यह था कि उन्होंने मिथिलामें उत्पन्न होनेके कारण श्रीजनक नन्दिनीको अपनी सगी बहिन मान लिया । उन्होंने सच्चे मनसे मान लिया तो मर्यादा पुरुषोत्तम अपनी ओरसे प्रमाद कर सकते थे ?

हिमालयके किसी क्षेत्रमें जन्म लेने वालेको जगदम्बा पार्वतीको बहिन, बुआ या पुत्री माननेका अधिकार है या नहीं ? यदि वह सचाईसे यह सम्बन्ध सम्हाल ले तो श्रीगिरिराज-नन्दिनी उसे अपना माननेमें संकोच करेंगी या उसे विस्मृत करेंगी ?

सम्पूर्ण भारतवर्ष तीर्थ है । आपके कुल-सम्बन्ध और जन्मभूमिके सम्बन्ध आपको अद्‌भुत अलौकिक परिचय प्रदान करते हैं । आप अबतक उसे भूले हुए रहे हैं । अब भी उसे सम्हाल लें तो आपके परिचय लोकोत्तर हो जायेंगे ।

अयोध्यामें एक गृहस्थ सन्त हो गये हैं । वे वशिष्ठ गोत्रीय ब्राह्मण होनेसे श्रीरघुनाथजीको अपना शिष्य मानते थे । उन्हें आशीर्वाद देते थे । उन पण्डित उमापति त्रिपाठीके अनेक चमत्कार वहाँ प्रसिद्ध हैं । उनके कुलके तो लोग अभी अयोध्यामें हैं ।

ऐसा कोई सम्बन्ध न भी मिलता हो तो भी कठिनाई क्या है ? कन्हाईतो बहुत भोला गोपकुमार है । इसे आप अपना जो सम्बन्धी बनावेंगे, यह झट उसे स्वीकार कर लेगा और आप जिस दृढ़ता, निष्ठासे मानते रहेंगे, यह उसी दृढ़तासे निश्चय मानता रहेगा ।

बात सम्भवतः सन् १९३७ या ३८ की है । मैं तब 'संकीर्त' '(मेरठ) का सम्पादक था । शिवरात्रिपर पशुपतिनाथजीके दर्शन करने नेपाल गया ।

वहीं एक बंगाली सन्यासी श्रीऋषिकुमारजी (कुमार ऋषि नहीं) मिल गये । उन्होंने नामके साथ आयु पूछी । फिर अपनी आयु बताकर बोले– 'तुम मेरे छोटे भाई हुए ।'

उस समय काठमाण्डूसे भारत तक सीधी ट्रेन या सड़क नहीं थी । बीचमें पैदल भी चलना पड़ता था । उस लौटती यात्रामें वर्षा आगयी । वे दौड़ते आगे गये और भीड़ भरे स्थानमें हलवाईकी भट्टीके पास मेरे लिए गरम बिस्तर लगा रखा । पूरे मार्गमें उन्होने जो स्नेह दिया, वह अविस्मरणीय है; किन्तु संसारमें भाग्यानुसार भटकते प्राणी कहाँ ऐसे सम्बन्धोंका सम्पर्क बनाये रख पाते हैं ।

कन्हाईके साथ तो ऐसी कोई कठिनाई नहीं है । अतः आप इससे परिचय कीजिये और इसके सम्बन्धको अपनी ओरसे ढीला मत पड़ने दीजिये ।

जहाँ तक लौकिक सम्बन्धोंकी बात है, आपके लिए अपनी ओरसे उन्हें दृढ़ करना बाधक ही बनेगा । आप बन्धका अर्थ जानते हैं । बन्ध अर्थात् बन्धन । सम्वन्धका अर्थ हुआ बहुत दृढ़ वन्धन । इसी सम्बन्धसे जो युक्त है, वह बान्धव है । अतः संसारमें ऐसा सम्बन्ध बाँधने योग्य नहीं है । इसे काटा न जा सके तो जहाँ तक वन सके शिथिल किया जाना चाहिये ।

बाँधने योग्य केवल एक सम्बन्ध है । गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं–

सब कै ममता ताग बटोरी । मम पद मनहि बाँध बरि डोरी ॥

रा.च.मा. ५-४७-५

ममताके धागे संसारमें बिखरे पड़े हैं और वे कच्चे सूतके समान बहुत दुर्बल हैं । स्वार्थका झटका लगते ही भाई-भाइयोंका, पिता-पुत्रका, माता-पुत्र तक भी ममत्व टूट जाता है । इन सब ममत्वके धागोंको यहाँसे समेटकर परस्पर मिलाकर रस्सी बनाइये और उससे कन्हाईके चरण बाँधिये । तब यह चपल भागेगा नहीं । तब आप कह सकेंगे–

अस अभिमान जाइ जनि भोरे । मैं सेवक रघुपति पति मोरे ॥

रा.च.मा. ३-१०-२१

सब प्रकारका अभिमान भले त्याज्य हो; किन्तु यह अभिमान तो भूलसे भी शिथिल नहीं पड़ना चाहिये कि श्रीव्रजनवयुवराज हमारा है ।

आप अपने परिचयका कभी आकलन करके अपने परिचयका मूल्यांकन कर देखिये । इसका यदि विश्लेषण करेंगे तो पावेंगे कि उसका अधिकांश आपके लिए अनुपयोगी है । आप उसे लौकिक कर्त्तव्य अथवा शिष्टाचारवश निभाते हैं, निभाते रह सकते हैं; किन्तु अन्तरमें उसे महत्त्व मत दीजिये ।

जिस पदार्थकी आपके मनमें महत्ता है, वह जिसे प्रचुर प्राप्त हो, आपका मन उसे महत्त्वशाली मान लेता है । आप उसे सम्मान देते हो और उससे परिचयका प्रयत्न करते हो ।

जिन लोगोंकी धनमें महत्त्व बुद्धि है, वे बड़े धनियोंका सम्मान-सत्कार करेंगे ही । उनसे परिचयको लालायित रहेंगे, प्रयत्न करेंगे । भले वह धनी उनको महत्त्व न दे और उससे उन्हें कोई लाभ न हो ।

इसी प्रकार लोकनेताओं तथा उच्चाधिकारियोंका स्वागत-सत्कार करनेमें लोगोंमें स्पर्धा होती है । जनता इनके दर्शनोंको भागती है । यह उच्च-पदके प्रति मनमें गौरव-भावनाके कारण है । तात्कालिक लाभकी आशा उससे कम ही होती है । उलटे अनेक बार ऐसा उच्च लोगोंसे परिचय अपने लिए कुछ कठिनाइयाँ ही उत्पन्न करता है ।

बाबू श्रीसम्पूर्णानन्दजीका सन् १९१७ के असहयोग आन्दोलनके समयसे श्रीभाईजी (सम्पादक– कल्याण श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) से परिचय था और वह परिचय घनिष्ठ बन चुका था । जब बाबू सम्पूर्णानन्दजी उत्तर प्रदेशके मुख्यमन्त्री थे तो गोरखपुर पहुँचनेपर श्रीभाईजीसे मिलते ही थे ।

कांग्रेस सत्याग्रह-आन्दोलनके समय जब बाबू सम्पूर्णानन्दजी वाराणसीमें कारागारमें थे, मैं भी था; किन्तु आयु कम होनेके कारण मैं लड़कोंके वार्डमें था । लेकिन वहाँ अपने उत्पातोंके कारण कुछ प्रसिद्ध होगया था ।

मैं जब गीता प्रेसमें 'कल्याण' के सम्पादन विभागमें था तो बाबू सम्पूर्णानन्दजी गोरखपुर गये । पता नहीं कैसे उन्हें मेरा पता लगा । उन्होंने श्रीभाईजीसे कहा– "सत्याग्रह आन्दोलनके मेरे एक साथी आपके यहाँ हैं, उनसे मिलना हो सकेगा ?"

यह चर्चा गीताप्रेसमें हो रही थी । मैं गीतावाटिकामें रहता था । श्रीभाईजीने बतलाया– "वे कैलास-मानसरोवरकी यात्राके लिए आज नैनीताल जानेवाले थे । सम्भव है स्टेशन पहुँच गये हों ।"

बात मुख्य मन्त्रीकी थी, अतः मुझे स्टेशनपर ही फोनपर बुलाया गया । फोनपर मैंने नमस्कार करके कहा– "बाबूजी, आपके स्मरणके लिए आभार; किन्तु मेरे और आपके भी हितमें है कि वर्तमान पदपर रहते आप इस परिचयको विस्मृत ही बने रहने दें ।"

'क्यों ?' उधरसे चौंकनेका स्वर आया ।

मैंने कहा– "लोगोंको पता लगेगा कि आपसे मेरा परिचय है तो लोग उचित-अनुचित सिफारिशें आप तक पहुँचानेके लिए मुझपर दबाव डालेंगे । मैं यह न करूँ तो व्यर्थ विरोधी बना लूँगा और करता रहूँ तो स्वयं कर्तव्यच्युत होऊँगा । इससे आपका भी सिरदर्द बढ़ेगा ही ।"

"तुम पहिले जैसे ही अक्खड़ बने हो !" कहकह एक खुला हास्य किया उन्होंने और फोन रख दिया । फिर न मैंने उनसे मिलनेका प्रयत्न किया, न उन्होंने कोई चेष्टा की ।

श्रीहरिबाबाजी महाराजने तो गंगा तट (गवाँ) का बाँध बन जानेके बाद प्रायः नियम-सा कर लिया था कि किसी नये व्यक्तिसे मिलना होता तो चौखटपर खड़े-खड़े ही उसकी बात सुन लेते । गिने शब्दोंमें उत्तर देते । अपने कमरेमें आनेका अवसर बहुत थोड़े लोगोंको देते थे । व्यक्ति चाहे जितना प्रसिद्ध और लौकिक दृष्टिसे बड़ा हो, उसे परिचय करनेका अवसर ही नहीं देते थे ।

इसके विपरीत मैंने देखा कि जगद्गुरु शंकराचार्यके वृन्दावन पधारनेका समाचार मिला तो श्रीमहाराज स्वयं उनके ठहरनेका स्थान तथा स्वागतकी व्यवस्था देख रहे थे । झंडी आदि लगानेका निर्देश दे रहे थे ।

एक ने कहा– "ये तो वही ब्रह्मचारी रामजी हैं जो श्रीउड़िया बाबाजी महाराजकी सेवामें यहाँ रहते थे ।"

श्रीहरि बाबाजीने उन्हें डाँट दिया– "इस प्रकार मत बोलो । अब वे महापुरुष हैं ।"

'नाते नेह रामके मनियत'

(विनय-पत्रिका– १७४)

यह बात इस घटनासे स्पष्ट हो गयी । आप कन्हाईके नातेसे परिचय करेंगे– बढ़ावेंगे तो यह परिचय, सम्बन्ध आपको संसार-बन्धनसे मुक्त करेगा और सांसारिक लोगोंसे परिचय बढ़ावेंगे तो वे आपके प्रपञ्चमें अधिकाधिक लिप्त ही करनेवाले हैं ।

आप किसी व्यावहारिक कारणसे किसीसे परिचय करना चाहते हैं या करते हैं तो ठीक ही है; किन्तु इस संसारके सब परिचय 'पान्थ संगम' यात्राकी मैत्री होते हैं । ट्रेन या हवाई-जहाजमें अनेक सह-यात्रियोंसे परिचय होता है । अनेक लोग परस्पर एक-दूसरेका पता लिख लेते हैं; किन्तु जिसका स्टेशन आया, वह उतर गया । उसकी मैत्री वहीं समाप्त हो गयी । जिनका उसने पता आग्रह करके लिखा था, उन्हें वह फिर एक कार्ड तक नहीं लिख पाता ।

संसारमें बड़े-बड़े कहे जानेवाले लोग वे धनी हों, नेता हों या पदाधिकारि हों, वे अपने समीप आने वालोंसे बिना किसी हिचकके सेवा लेनेके अभ्यासी होते हैं । वे इसे अपना स्वत्व मानते हैं । ऐसी सेवासे वे कोई कृतज्ञता अनुभव नहीं करते । उनमें-से अधिकांश अनेक लोगोंको अनेक आश्वासन दे जाते हैं और फिर आप उनके पास जायें अथवा उनसे मिलें तो वे आपको पहिचान लें यही बहुत बड़ी बात माननी पड़ेगी ।

संसारका परिचय तो ऐसा ही है । यह तो एक ही सर्वेश्वरेश्वर ऐसा है जो संकोचीनाथ है–

सकुचत सकृत प्रनाम किये ते ।

उससे परिचय कैसे हो, यह मत पूछिये । जो उसके जन हैं, जो उससे प्रीति करते हैं, उनका परिचय साक्षात् उसीका परिचय है ।

भगवान् भक्तभक्तिमान् ।

(भा० १०।८६-५९)

भगवान् तो अपने भक्तोंकी भक्ति करनेवाला है । अपने भक्तोंके स्नेह,

परिचित, सेवक उसको अत्यन्त प्रिय हैं । वे स्वयं उनसे परिचय कर लिया करते हैं ।

एक प्रसिद्ध महात्मा एक बार अकेले यात्रा कर रहे थे । यात्रामें एक ठाट-बाटवाले सज्जन ट्रेनके उसी डिब्बेमें समीप आ बैठे । महात्मा बहुत सरल, सादे वेशमें रहनेवाले थे । उन सज्जनने बात करते हुए उनसे उन महात्माके ही एक शिष्यका नाम लिया– 'मैं तो उन सत्पुरुषका कृपापात्र हूँ ।'

'अहा ! आप उनके परिचित हैं ? आपपर उनका स्नेह है ?' महात्मा विभोर होकर बोले– 'आपका दर्शन हुआ, यह मेरा परम सौभाग्य ।'

पूरे मार्गमें महात्मा उनका सम्मान करते रहे । उन्होंने न अपना परिचय दिया और न यह बतलाया कि आप जिनका नाम ले रहे हैं, वे मेरे शिष्य या सेवक हैं ।

कन्हाईको तो ऐसा परिचय बहुत प्रिय है । इसने अनेक बार अपनेको अपने भक्तोंके सेवक रूपमें व्यक्त किया है । महाराज उग्रसेनके सिंहासनके सामने बहुत विनम्रतासे कहता था–

'निबोधय देव निधारयेहि ।'

'महाराज ! यह प्रार्थना सुनें !' अथवा देव ! इस तथ्यपर ध्यान देनेका अनुग्रह करें ।'

यः त्वामनु समामनु ।

'मित्र ! जो तुम्हारे पीछे चलते हैं, वे मेरे ही अनुयायी हैं ।'

अतः इस गोपकुमारसे परिचय कीजिये । इसके जो परिचित, स्नेही मिल सकें, उनसे परिचय बढ़ाइये । यह परिचय स्थायी रहनेवाला है । काल इसे स्पर्श नहीं कर पाता ।

इसके साथ अपनी परिचय वृत्तिका निरीक्षण करते रहिये कि अकारण आप किनसे परिचय करनेको उत्सुक रहते या प्रयत्न करते हैं । इससे आप समझ सकेंगे कि आपके मनमें किस विषयकी महत्त्व बुद्धि है । लौकिक महत्त्व बुद्धिसे सतर्क रहना चाहिये । अन्यथा यह आपको सहज ही संसारके किसी बन्धनमें उलझा देगी ।

जीवन बहुत छोटा है और बहुत महत्त्वपूर्ण है । यह संसारके व्यर्थ परिचयों में नष्ट कर देने योग्य नहीं है । अतः स्मरण रखें कि 'बहुत चलते पुर्जे' एवं 'बहुत पहुँचवाले' लोग वस्तुतः बहुत नासमझ हैं । वे लौकिक परिचयोंके कूड़ेको उलटनेमें ही जीवन नष्ट कर रहे हैं । परिचय करने योग्य केवल कन्हाई है । इससे यथाशीघ्र परिचय करनेका प्रयत्न कीजिये ।



१२. आपका लोकनिर्वाह

आपका लोकनिर्वाह कैसे होता है, इस पर आपने कभी विचार किया है ? हम सनातन-धर्मी भगवानको तथा प्रारब्धको मानते हैं; किन्तु केवल बात करनेके लिए मानते हैं या हृदयसे मानते हैं ? सच्चाई तो यह है कि अधिक लोग केवल अपने उद्योगपर– पापपर विश्वास करते हैं । ऐसा नहीं है तो झूठ, छल-कपट आदिका आश्रय क्यों लिया जाता है ?

आप कहते हैं– "मन कहीं ठहरता नहीं । कन्हाईमें लगता नहीं ।" तब सोचना होगा कि ऐसा क्यों होता है ? अपने शास्त्र कहते हैं–

आहार शुद्धौ सत्त्वशुद्धिः,

सत्त्वशुद्धौ ध्रुवास्मृतिः ।

आहार शुद्ध होनेसे अन्तःकरण शुद्ध होता है और अन्तःकरण शुद्ध होनेसे अविचल स्मृति बनती है ।

आप कहेंगे कि 'हमारा आहार तो शुद्ध है । केवल शाकाहारी भोजन करते हैं । गौका दूध, घी काममें लेते हैं । कोई अपवित्र वस्तु मुखमें नहीं डालते ।'

आपकी बात ठीक हो सकती है; किन्तु मनु महाराज कहते हैं–

सर्वेषामेव शौचानां अर्थशौचं परं स्मृतम् ।

योऽर्थे हि शुचिः सशुचिः न मृद्वारिशुचिः ।।

(मनु स्मृति– ५-२०-५)

सब पवित्रताओंमें धनकी पवित्रता सबसे प्रधान है । जिसका धन पवित्र है, वह पवित्र है । केवल मिट्टी-पानीसे पवित्र होने वाला पवित्र नहीं है ।

अभी पिछले वर्षोंमें वनस्पति-घीमें गायकी चर्बी मिलानेकी बहुत चर्चा फैली । अधिकांश वनस्पति बनाने वालोंने यह काम किया । उनमें जैन और

केवल शाकाहारी भोजन करने वालोंकी संख्या बड़ी है ।

इस प्रकार दूसरोंको छलसे अपवित्र वस्तुएँ खिलानेवाले, मादक पदार्थोंका व्यवसाय करनेवालोंका अन्तःकरण तो पहिले ही लोभसे कलुषित है । वे स्वयं बहुत शुद्ध आहार करें तो इतनेसे उनका हृदय कैसे शुद्ध हो जायेगा ?

आप झूठ, चोरी, छल अपनाये रखेंगे अथवा व्यवसायमें मिलावट करेंगे, मादक द्रव्य बेचेंगे तो केवल आहार शुद्धि आपके हृदयको शुद्ध नहीं कर सकेगी ।

किसी सरोवरमें गन्दा नाला भी डालते रहें और थोड़ी निर्मली भी डालें तो सरोवरका जल स्वच्छ बनेगा ?

आप कहते हैं कि 'आज छल-कपटके बिना, झूठ बोले बिना संसारका व्यवहार नहीं चलता । कोई व्यापार नहीं चल सकता ।'

इसका अर्थ है कि जीवन-निर्वाह अथवा परिवारका पालन प्रारब्धके अनुसार या ईश्वरीय-विधानसे नहीं होता । वह तो आपके छल-कपट, झूठ आदिसे ही होता है । आप ऐसा मानते हैं ।

जो लोग बहुत चतुर हैं और भरपूर झूठ बोलते हैं, छप-कपट करते हैं वे सब सम्पन्न ही हैं ?

जो ईमानदार और सच्चे हैं, वे बहुत सम्पन्न नहीं भी हो सकते हैं; किन्तु क्या ऐसे सब लोग दरिद्र ही हैं ?

जो छल, असत्य आदि अपनाता है, उसका चित्त शंकित रहेगा या नहीं ? जिसमें अपने शरीर, सम्मान और परिवारके प्रति गाढ़ आसक्ति नहीं है, जो लौकिक सुख-सफलताका ही प्रेमी नहीं है, वह क्या अनासक्त भावसे झूठ बोलता तथा छल-कपट आदि करता है ?

जब आप जान-बूझकर संसारकी आसक्ति बढ़ा रहे हैं, असत्य, छल आदि अपनायें हैं तो आपके हृदयमें संसार भरा है या नहीं ?

हृदयमें संसार भी बसाये रखा जाय और श्रीव्रजराजकुमार भी आ बसे, यह आप कैसे आशा करते हैं ? आप जानते तो हैं—

जहाँ राम तहँ काम नहिं जहाँ काम नहिं राम ।
तुलसी कबहुँ कि रहि सकहिं रवि रजनी इक ठाम ।।

कन्हाई नवनीत प्रिय है । यह माखनकी और माखनके समान शुद्ध, श्वेत, कोमल, सरस चित्तकी भी चोरी कर लेता है; किन्तु अहंकार, लोभ-द्वेष कलुषित हृदयसे तो दुर्योधनके बड़े भारी स्वागतकी प्रस्तुति भी इसने ठुकरा दी ।

यद्यपि दुर्योधन भी सम्बन्धी ही था । श्रीकृष्णके पुत्र साम्बको उसने अपनी पुत्री ब्याही थी ।

कन्हाईको ऊपरी शौचाचारका कदाचित पता भी नहीं होगा । सम्पूर्ण वेदोंके आदि प्रवर्तक, वैदिक परम्पराके परमाचार्य ब्रह्माजी इसीलिए भ्रममें पड़े; क्योंकि उन्होंने देखा कि नन्दनन्दन तो गोपकुमारोंका उच्छिष्ट छीन-झपट कर भी खा रहा है । यह किसीसे पूछता ही नहीं कि 'यह नैवेद्य तेरी माँ ने स्नान करके बनाया है या बिना स्नान किये ?'

नैवेद्य भी कोई पक्वान्न नहीं, भात और दही व्रजसे साथ लाया । उसे लेकर बालक गायोंके पीछे पता नहीं कहाँ-कहाँ भटके हैं । वह भी अमनियाँ नहीं जूठा । लेकिन वे गोप-बालक, उनके माता-पिता स्वजन कैसे ? सब केवल श्रीकृष्णैक प्राण । उनमें अपने शरीर, परिवार या मान मर्यादाका किञ्चित मोह नहीं और उनका धन तो उनकी गायें जो उनके श्रम, उनकी श्रद्धासे पालित-पोषित होती थीं ।

आप जानते हैं कि कोई अपना सहज स्वभाव नहीं छोड़ पाता । कन्हाईका सहज स्वभाव है परम शुद्ध, प्रेमपूत हृदयमें बैठना, नाचना, क्रीड़ा करना । यह कहता तो है—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ।।

गीता— ९-२६

पत्ता, फूल, फल, जल आदि जो कोई मुझे भक्तिपूर्वक अर्पित करता है, वह भक्तिपूर्वक अर्पित पदार्थ मैं एकाग्र चित्तसे भोग लगाता हूँ ।

आप क्षमा करें, यह गोपकुमारकी बात है । यह श्यामसुन्दर न दण्डी सन्यासी है और न याज्ञिक ब्राह्मण । अतः इसने ब्राह्मण-अब्राह्मण तो क्या हिन्दू-अहिन्दूकी बात भी नहीं की । जो कोई भी हो; किन्तु अर्पित करे 'भक्त्या' ।

आप तिलक लगानेको, माला-कण्ठीको भक्ति मानते हैं या जप, पाठ, पूजन, कीर्तन आदिको ? भक्ति है प्रीतिका परिपक्व स्वरूप और एक ही हृदयमें संसार तथा श्रीकृष्ण दोनोंके प्रति आसक्ति-प्रीति रह सकेगी ?

बिनु बिस्वास भगति नहिं..........।

रा.च.मा. ७-९०-क

आपमें इस नटनागर पर विश्वास है ? यदि इसपर, इसकी उदारता पर ठीक विश्वास हो तो जीवनमें भय, आशंका, असत्य, छल-कपट टिके रह सकेंगे ?

'रक्षतीति विश्वासः ।'

शरणागतिके लक्षणोंमें ही है कि 'भगवान् मेरी प्रत्येक विपत्तिसे, प्रत्येक समय रक्षा करेंगे ।'

श्रीमर्यादा पुरुषोत्तमने कहा—

निर्मल मन जन सो मोहि पावा ।

रा.च.मा.– ५ ।४३-५

मलिन धन वाला पुरुष निर्मल मन रह सकता है ? जिसके मनमें लौकिक आसक्ति और कामना नहीं है, उससे छल-कपट हो सकते हैं ?

आप जो कर रहे हैं, जैसे कर रहे हैं, वह सोच-समझकर ही कर रहे हैं । आप यदि उसे उचित भी मानते हैं, आपकी बुद्धि भी उसका समर्थन करती है, तब तो आपमें परिवर्तनकी कोई आशा नहीं है । लेकिन यदि आप उसे उचित नहीं मानते, उसे अपनी दुर्बलता मानते हैं, तो आपमें परिवर्त्तनकी आशा है ।

अनेक बार भले और समझदार लोग भी कुछ भूलें करते हैं । उन्हें अपनी भूल, भूल ही नहीं लगती । उन दिनों मैंने आयुर्वेदके एक निघटुसे

ग्रामीण वनस्पतियोंका थोड़ा अध्ययन किया था । आस-पासके ग्रामीण रोगी आते थे तो उन्हें औषधि बता देता था ।

एक दिन एक गाँवके ठाकुर आये । उन्हें शौचके मार्गसे रक्त जाता था । बहुत अधिक जलन होती थी । उन्होंने बतलाया— 'मैंने आस-पासके वैद्यों और काशीमें सत्यनारायण शास्त्रीकी भी औषधि की, पर कोई लाभ नहीं हुआ ।'

मैंने मनमें कहा— "जब इतने बड़े चिकित्सक कुछ नहीं कर सके तो मैं कौन-सा तीर मार सकता हूँ ।"

स्वभावतः मैं बहुत गम्भीर हो गया । सोचने लगा कि अन्ततः इनके रोगका ऐसा क्या कारण है कि उस तक चिकित्सकोंकी दृष्टि नहीं जाती ।

कुछ क्षण सोचकर मैंने उनसे पूछा— 'क्या आपने किसीका हक छीन या दबा लिया है और इससे उसे बहुत कष्ट है ? आपकी ओरसे किसीके चित्तमें जलन है ? केवल द्वेषवश वह जलन नहीं होनी चाहिए ।'

"मैं किसीका हक क्यों छीनूँगा । मुझे भगवान्‌ने सब कुछ दिया है ।" उन्होंने तुरन्त प्रतिवाद किया ।

"तनिक गम्भीर होकर विचार करें ।" मैंने उनसे अनुरोध किया— "इसका आपके रोगसे सम्बन्ध है ।"

समीप बैठे लोग कह रहे थे कि वे बहुत भले और ईमानदार व्यक्ति हैं; किन्तु कुछ सोचकर वे बोले— "मेरी एक विधवा भाभी हैं । वे अपने मायकेमें रहती हैं । मुझसे वही जलती हैं । उन्होने कोई मन्त्र या टोटका कराया है ?"

"आपने उनका हक उन्हें दिया है?" मैंने पूछा ।

"वे हमारे यहाँ रहें तो मैं उन्हें कोई कष्ट नहीं होने दूँगा ।" वे कहने लगे— "किन्तु वे मायकेमें रहेंगी तो उन्हें जो कुछ दिया जायेगा, उसे भाई-भतीजोंको दे देंगी ।"

मैंने उनकी आर्थिक स्थिति पूछताछ कर उनसे कहा— "आपको स्वस्थ होना हो तो अपनी भाभीको सौ रुपये महीना मनिआर्डरसे भेजा करें । उनका जी जलता रहेगा तो आपका रक्त और जलन दूर नहीं होगी ।"

समझानेपर वे मान गये । दो तीन महीने पीछे फिर आये और बोले—

"अब दवा दे दीजिये । मेरा रोग रुपयेमें चार आना शेष बचा है ।"

मैंने पूछा— "आप अपनी भाभीको क्या भेजते हैं ?"

"पच्चीस रुपया महीना । अकेली स्त्रीके लिए इतना बहुत है ।" उन्होंने मुझे समझाना चाहा ।

"आपकी दवा ही यह है कि उन्हें कमसे-कम इतना और भेजा कीजिये ।" मेरे यह कहनेपर वे चले गये और फिर लौटकर नहीं आये ।

यह घटना इस बातका स्पष्ट प्रमाण है कि आपके लोक-व्यवहारके धर्मा-धर्मका आपके स्थूल शरीरपर भी प्रभाव पड़ता है, तब आप कैसे आशा कर सकते हैं कि उसका आपके चित्तपर प्रभाव नहीं पड़ेगा ?

आपके व्यवहारसे कोई दुःखी या उद्विग्न होगा तो उसके अन्तर्यामी रूपमें जो स्थित है, वह आपसे सन्तुष्ट, प्रसन्न हो सकेगा ।

अतः आपके लोक-निर्वाहमें यह दृष्टि बहुत आवश्यक है कि जान-बूझकर या प्रमादवश आपके व्यवहारसे किसी दूसरेको पीड़ा न हो । विशेषतः कोई साधनहीन-दुर्बल आपके द्वारा पीड़ित, उद्विग्न न हो ।

रहिमन हाय गरीबकी, हरि सो सही न जाय ।
मरी खालकी स्वाससे सार भस्म होइ जाय ।।

भगवान्को आप अनाथ-नाथ, दीनबन्धु कहते हो । उसके ऐसे बन्धुओंको आपसे कष्ट होगा तो वह आपसे प्रसन्न हो सकेगा ?

एक नवयुवकने एक बार कहा— आप पिताजीको कह दें, वे आपकी बात मानते हैं । इस बुढ़ापेमें क्यों कष्ट उठाते हैं ? घरमें कोई अभाव नहीं और उनका कोई तिरस्कार भी नहीं करता; किन्तु आश्रममें पड़े हैं । इससे मेरी बदनामी होती है ।"

मैंने उसके पितासे बातकी । उन्होंने बतलाया— "अनेक बार मना करनेपर भी लड़का व्यापारमें उलटा-सीधा किये बिना मानता नहीं । कह देता है— "पिताजी, आजकल इसके बिना काम नहीं चलता ।" इसलिए मैंने घर छोड़ दिया है । आश्रममें थोड़ी सेवा कर देता हूँ । मुझे अब दो समय भोजन ही तो चाहिये ।"

बात उन वृद्धकी मुझे उचित लगी । आप स्वयं कोई अनुचित काम नहीं करते, आपका उपार्जन पवित्र है; किन्तु जिस सम्मिलित परिवारमें रहते हैं, उसके दूसरे सदस्य जो उचित-अनुचित करते हैं उसे जानते हुए भी मौन तो रहना ही पड़ता है । यह आपका मौन उनके अनुचित कार्मों में आपको भी भागीदार बनाता है या नहीं ?

आप जानते हो कि पिताके कर्मोंमें, पुत्रको, पुत्रके कर्ममें पिताको भाग प्राप्त होता है । पति-पत्नी तो एक दूसरेके कर्ममें बराबरके भागीदार होते हैं । यह कर्म-विनिमय किस आधार पर होता है ? आसक्तिके आधार पर । जहाँ आपकी आसक्ति है, वहाँ कर्ममें भी कुछ भाग मिलता है । फिर जहाँ सम्बन्ध स्पष्ट बना है, वहाँ आप दायित्वसे सर्वथा कैसे बच सकते हैं ।

इस प्रकार आपके अन्तःकरणपर आपके न जानते हुए भी बहुत-सा मल जमता रहता है । जैसे आपके शरीर और वस्त्रपर अनजानमें ही बाहरी धूलि, धुआँ आदि पड़ते रहते हैं और उन्हें मैला करते रहते हैं ।

इसमें आप जहाँ तक सम्भव होता है, अपने शरीर और वस्त्रोंको गन्दा होनेसे बचाते रहते हो और समय-समयपर स्नान तथा धुलाईसे उन्हें स्वच्छ करते रहते हो, यह क्रम बराबर चलाना पड़ता है । इसे अमुक समय सदाके लिए बन्द नहीं किया जा सकता ।

इसी प्रकार लोक निर्वाह एवं लोक व्यवहारमें भी सदा सतर्क रहकर आन्तरिक मलको बचाते रहना पड़ता है । इतने पर भी अनजानमें संगदोष, वातावरण दोषसे जो मलिनता आती रहती है, उसे सत्संग, परोपकर, सेवा, भजन-पूजनसे स्वच्छ करते रहना आवश्यक होता है ।

एक मित्रने पूछा– "अमुक सम्बन्धी आर्थिक दृष्टिसे असहाय और शरीरसे भी रोगी हैं; किन्तु वे आँख बचाकर अमुक-अमुक दुर्गुण छोड़ नहीं पाते । उनके साथ क्या किया जाय ?"

"उन्हें रोगी मानकर उनकी सेवा तथा पालन तो कर्तव्य है ।" मैंने सम्मति दी, "किन्तु वे यदि कभी जुए आदिसे कुछ ले आवें तो उसका किञ्चित् भी उपयोग घरमें नहीं करना चाहिये ।"

"इससे वे अपमानित अनुभव करते हैं । दुःखी होते और जोर-जोरसे

चिल्लाते हैं ।" उन मित्रने कहा ।

"उनका दुःखी होना, चिल्लाना भी उनके दोषोंकी भाँति सहना चाहिये ।" मैंने कहा– "अन्ततः रोगीके मल-मूत्र, कफ, पीव दुर्गन्धको सहकर भी स्वच्छ किया जाता है या नहीं ?"

आपका अन्तःकरण शुद्ध होगा तो निश्चय उसमें कन्हाई आवेगा । इसकी स्मृति बनी रहेगी हृदयमें; किन्तु अन्तःकरण शुद्ध बना रहे, इस विषयमें अपने लोक-निर्वाहमें भी आपको बहुत सावधान तथा सचेष्ट रहना होगा ।



१३. आपका लौकिक प्राप्य और लोकेषणा

आप संसारमें वड़ेसे बड़ा पद अथवा बड़ीसे बड़ी सम्पत्ति या सफलता क्या पाना चाहते हैं ? सीधे कहा जाय तो आपकी महत्त्वाकांक्षा क्या है और आपमें लोकेषणा– यशेच्छा कितनी है, इसका आपके लौकिक तथा पारलौकिक जीवनसे बहुत अधिक सम्बन्ध है । क्योंकि आपके चिन्तनकी सहज प्रवृत्ति आपकी महत्त्वाकांक्षाके ही अनुरूप होगी ।

एक साहित्यिक गोष्ठीमें एक बार यह बोलनेका विषय ही रखा गया– 'आपकी महत्त्वाकांक्षा ।' यह बात तो सत्यके नाते कहनी पड़ेगी कि उस गोष्ठीमें बोलने वाले कई मित्र ईमानदारीसे नहीं बोल सके । वे अपने आदर्शवादके मुखौटेको उतार नहीं सके । लेकिन मेरे सामने तो समस्या ही खड़ी हो गयी लोकमें कोई महत्त्वाकांक्षा मेरी नहीं और परलोकमें भी कन्हाईको अपना कहकर क्या कुछ शेष रहता है ?

आप भली प्रकार विचार करके देखें कि आप अपनी लौकिक स्थितिसे सन्तुष्ट हैं या नहीं । अधिक लोग, फिर वे चाहे जितने सम्पन्न हों या उच्च पदपर हों, अपनी स्थितिसे असन्तुष्ट ही रहते हैं ।

आप यदि सोचते हैं कि आपको अमुक पद या धन मिल जायेगा तो आपको सन्तोष हो जायेगा, तो यह केवल भ्रम है । तृष्णाका कोई अन्त नहीं हुआ करता । अमुक आवश्यकताएँ तो अनिवार्य हैं । इतना तो होना ही चाहिये ।' यह मनकी छलना है । ऐसी अनिवार्य लगने वाली आवश्यकताओंकी पंक्ति कभी समाप्त नहीं होने वाली है ।

आपने ऐसे लोगोंको देखा है जिनके पास रहनेको झोंपड़ी भी नहीं है । पूरे परिवार सड़कके फुटपाथपर रहते हैं और पूरा जीवन काट देते हैं ।

असन्तोषसे कोई परिवर्तन परिस्थितिमें नहीं होता । उससे केवल जीवनकी शान्ति, सुख नष्ट हो जाता है और भगवान् दूर हो जाता है ।

बिनु सन्तोष न काम नसाहीं ।। काम अछत सुख सपनेहुँ नाहीं ।।

रा.चा.मा. ७।८९-१

बहुत पुरानी बात है । हम दो-तीन मित्र एक महात्माका दर्शन करने पैदल जा रहे थे । मार्गमें देखा कि एक काले रंगका व्यक्ति बांसोंके झुरमुटमें मिट्टीके डले रखकर उन्हींका चूल्हा बनाकर उस पर लोहेके तसलेमें कुछ पका रहा है; किन्तु तसलेसे धुंआ उठ रहा है । उसमें जो कुछ भी रहा हो, जल चुका था । उस ओर उसका ध्यान नहीं था । वह किसी और चिन्तनमें था । उसका हाथ अनायास बीच-बीचमें चूल्हेमें जलती लकड़ियोंको आगे ठेल रहा था । उसके शरीरपर शीतकालमें भी केवल कौपीन थी । आसपास भी उसका कोई वस्त्र या वस्तु दीखती नहीं थी ।

उसे बाधा न पड़े, इसलिए हम लोग चुपचाप उससे थोड़ी दूर पीछे ही खड़े हो गये । उत्सुकतावश देखने लगे कि वह कब सावधान होता है और सावधान होकर करता क्या है ।

कुछ ही देरमें वह सावधान हुआ । उसने अपने तसलेकी ओर देखा । अब उससे धुंआ भी नहीं उठ रहा था । उसमें चढ़ी वस्तु जलकर भस्म हो चुकी थी । उसने झटपट अग्नि बुझा दी । आकाशकी ओर देखकर हँसकर बोला– "अच्छा, आज मल्ल हवाको खिलानेका मन नहीं है ।"

पीछे आस-पास पूछकर पता लगा कि वे जातिके मल्लाह महात्मा हैं । ऐसे ही रहते हैं । दिनमें एक बार उस तसलेमें आटा, नमक आदि पानीमें घोलकर पका लेते हैं । यही उनका भोजन है । वह भी जल गया तो कोई दुःख या असन्तोष नहीं ।

'तीन टूक कौपीनके मांगि मधुकरी खाहिं ।'

जैसी बात भी नहीं थी । वे अपनेको 'मल्ल हवा' कहते थे । लोगोंसे दूर-दूर रहते थे । साधु मानते ही नहीं थे अपनेको । प्रणाम करो तो भूमिपर सिर रखकर हाथ जोड़ते थे ।

आप कहेंगे– 'वे तो महात्मा थे । उनकी चिन्ता भगवान् करते हैं ।'

संसारमें जितने पागल हैं, उनकी चिन्ता आप करते हैं ? वे तो पागल हैं, अपनी चिन्ताकर नहीं सकते और भूखों मरते देखे नहीं जाते । तब उनकी चिन्ता कौन करता है ?

इस संसारका जो निर्माता है, वही इसका पालक और संचालक भी

है । सबकी चिन्ता-व्यवस्था वही करता है ।

आप अपनी और अपने आश्रितोंकी चिन्ता करते हैं, इसीको लेकर अपना लौकिक प्राप्य निश्चित करते हैं । आपकी महत्त्वाकांक्षा इसी घेरेमें और इस महत्त्वाकांक्षाने आपको दिया क्या है ? उद्वेग, अशान्ति, निराशा तथा सर्वेश्वरकी विस्मृति ।

आपकी जो वर्तमान परिस्थिति है या आगे होगी, वह विश्वनियन्ताके विधानके अनुसार ही है या नहीं ? आप उसके विधानमें अपनी चिन्ता तथा प्रयत्नसे कोई परिवर्तन कर सकेंगे ?

'तब सब लोग निष्क्रिय हो जायें ? हाथ पर हाथ धरे केवल बैठे रहें ?'

हिन्दू धर्म-शास्त्र मानव-जीवनकी परम सार्थकता निवृत्तिमें मानता है । हमारी सभ्यतामें निष्परिग्रह निष्क्रिय अवधूत सर्वश्रेष्ठ माना जाता है । सब ऐसे हो सकते हों तो अवश्य हो जायें । सृष्टि-संचालक दुर्बल नहीं है । वह ऐसी कोटि-कोटि सृष्टि कर सकता है; किन्तु माया देवी भी इतनी दुर्बल और सीधी नहीं हैं कि सबको इतनी सरलतासे निष्क्रिय, निष्परिग्रह हो जाने दें । बहुत थोड़े मनुष्य कहीं भगवत्कृपासे अवधूत हो पाते हैं ।

सब निष्क्रिय हो जायें तो संसार कैसे चलेगा ? यह चिन्ता आप छोड़ दीजिये । संसार चलानेका ठेका संसारके सञ्चालकने न आपको अभी दे रखा है, न आगे देने वाला है । आप कर सकें तो इतना ही करें कि अपनी महत्त्वाकांक्षा और अपने लौकिक प्राप्यकी चिन्ता छोड़ दें । ऐसा करके आप सुखी, शान्त हो सकेंगे । बुद्धिमानीका, विवेकी पुरुष जैसा काम करेंगे ।

तब क्या करें ?

करनेको तो बहुत कुछ है । आप कन्हाईको पाने, अपनानेको अपना लक्ष्य बनावें और इसके लिए आपको जो उचित सूझे वह करनेमें लग जायें ।

'शास्त्र और सन्त कहते हैं कि भगवान् साधन-साध्य नहीं हैं । अपनी कृपासे ही प्राप्त होते हैं । तब साधन करनेका लाभ ?

शास्त्र और सन्त तो यह भी कहते हैं कि 'जीवनके सब सुख-दुःख, यश-अपयशादि प्रारब्धानुसार ही मिलते हैं ।' तब आप इसे मानकर शान्त

क्यों नहीं हो जाते ? आप उद्योग क्यों करते हैं ?

जो शरीर और संसारके भोगोंके विषयमें उदासीन होगया, जिसने यह दृढ़ निर्णय कर लिया कि 'प्रारब्धसे जो होना है, वही होगा' वह तो साधनकी भूमिसे भी ऊपर उठ चुका । उसे साधन करनेकी आवश्यकता न शास्त्र बतलाते हैं, न सन्त; किन्तु यदि आपको अपने तथा अपने आश्रितोंके निर्वाहके लिए, अपनी किन्हीं कल्पित महत्त्वाकांक्षाओंकी पूर्तिके लिए कुछ प्रयत्न, कुछ जोड़-तोड़ करना आवश्यक लगता है तो उससे कहीं अधिक आवश्यक है कि आप यह परिणामहीन प्रयत्न त्याग कर पूरे उत्साह, बुद्धि-विवेकके साथ कन्हाईको अपनानेका साधन करें । उसमें पूरी शक्ति एवं हृदयसे जुट जायें ।

कन्हाई अपना हो जाये, इससे बड़ी महत्त्वाकांक्षा क्या दूसरी हो सकती है ? इससे महती कोई अन्य उपलब्धि होगी ? लेकिन यह महत्त्वाकांक्षा ऐसी है कि यदि आप सच्चे मनसे इसे महत्त्वाकांक्षा बना लें तो आपके इसी जीवनमें पूरी हो सकती है ।

'मन ! माधवको नेकु निहारहि ।
सुनु सठ, सदा रंकके धन ज्यों, छिन-छिन प्रभुहिं सम्हारहि ॥'

—विनयपत्रिका— ८५

इस कन्हाईको क्षण-क्षण सम्हालते रहना है । यह बहुत चपल है । छोटे बालकको पूरी सावधानीसे न सम्हाला जाये तो वह चाहे जो मुख में डाल लेता है या चाहे जिधर चल देता है । मेले-ठेलेमें बालक भटक जाते-खो जाते हैं तो वह बालककी भूल नहीं होती, बालकके अभिभावकका ही प्रमाद हुआ करता है ।

कन्हाईको मिट्टी खानेपर मैयाने ऐसा धमका दिया कि यह चाहे जो मुखमें डालना भूल गया । इतना डर गया कि भूख लगनेपर भी स्वयं कुछ मुखमें लेता नहीं; किन्तु यह गोप बालक अद्भुत है । आप इसे सम्हालते रहना भूल गये तो जन्म-जन्मसे भवाटवीमें भटक रहे हो । इसे आप सम्हालते रहो तो आपका यह भटकना मिट जाय ।

आप तो अपनी कामना-महत्त्वाकांक्षाको ही सम्हालनेमें ऐसे लगे हो कि कन्हाई भूल ही गया है; और यह कामना तो मृग-मरीचिका है । यह कोई

वस्तु सत्य तो है नहीं कि आपके हाथ आवेगी।

कन्हाईका स्वभाव भी नटखटपना करते रहनेका है। आपकी दृष्टि इसकी ओरसे हटी और यह खिसका। जब आपके समीपसे प्रकाश तथा आनन्द खिसक जायेगा तो आपके पास अन्धकार-अज्ञान एवं दुःखके अतिरिक्त और क्या बचा रहेगा ? प्रकाश-ज्ञान तथा आनन्दस्वरूप तो यह नन्दनन्दन ही है।

ऐसा नहीं है कि आप अपने लौकिक प्राप्यके लिए जितना सचिन्त और सचेष्ट रहते हो, उससे कम इस नटखटके लिए सचिन्त रहना पड़ता है; किन्तु लौकिक महत्त्वाकांक्षा तो पूरी हो तो भी चिन्ता, व्यग्रता, भय, आशंका ही देती है एवं कन्हाईके लिए सचिन्त होनेमें भी परमानन्द प्राप्त होता है।

जहाँ तक लोकेषणाकी बात है यह 'आ बैल मुझे मार' जैसी ही अज्ञता है। एक सन्तके समीप एक लेखक पहुँचे। वे अपनी किसी कृतिपर कोई पुरस्कार पानेको आशीर्वाद लेने गये थे। सन्त ही क्या जो अक्खड़ और अटपटे स्वभावका न हो। उन सन्तने उनसे पूछा— 'मैं तुझे यह आशीर्वाद दूँ कि सदा सहस्रों मक्खियाँ तेरे चारों ओर भिनभिनाती रहें और तू चद्दर ओढ़कर, मुख ढककर सोवें तो उस चद्दरके भी भीतर कुछ-सौ घुस जाया करें ?'

उन्होंने घबड़ाकर हाथ जोड़ा— 'आप ऐसा शाप तो मुझे मत दो !'

'मूर्ख ! यह लोगोंकी प्रशंसा मक्खियोंकी भिनभिनाहटसे अधिक कुछ है क्या ?' सन्तने उन्हें डाँटा— ''ये लोग तेरा खाना-सोना हराम कर देंगे। तू कब खाँसता-छींकता या पादता है, यह भी झाँकते, सूँघते रहेंगे। इनकी प्रशंसाको तू क्या करेगा ? ओढ़ेगा या बिछायेगा ?'

लोकप्रशंसा कोई स्थायी वस्तु नहीं है। लोग तो जिसे कन्धेपर उठाकर नाचते हैं, उसे शीघ्र भूल जाते हैं। अब कितने लोगोंको स्मरण है कि कांग्रेसके सातवें अधिवेशनके अध्यक्ष कौन थे ?

एक समय गामा विश्वविजयी पहलवान थे। उस समय तो उनकी शक्ति ही उनको सब सुविधा जुटा देती थी; किन्तु अपनी आयुके अन्तिम वर्षोंमें उनकी वह कीर्ति उनको जीवनकी आवश्यक सुविधाएँ भी नहीं जुटा सकीं। अभावग्रस्त और दुःखी ही रहे वे।

'प्रशंसा किसे प्रिय नहीं लगती ?' यह बात लोग बड़े आडम्बरसे कहते

हैं; किन्तु जो कन्हाईके प्रिय हैं, वे जानते हैं– 'प्रतिष्ठा शूकरी विष्ठा ।'

लोकेषणा बहुत सार हीन प्रलोभन है । जो एक सहस्र मूर्खों द्वारा प्रशंसित है, उसका ठीक नाम क्या होना चाहिये– मूर्खाधिराज ही या और कुछ ? लोक-प्रशंसित व्यक्ति यदि उस प्रशंसासे मोहित होकर उसे चाहने लगा तो समझो कि अब उसका पतन प्रारम्भ हो गया ।

यह लोकेषणाकी भूतनी सिर चढ़ती है तो कन्हाईको सम्हालना भूल जाता है और तब यह चपल धीरे-से खिसक भागता है । यह भागा और आप भवमें भटके । एक बार भटक गये तो भटकते रहिये । अनन्त-अनन्त जन्मोंसे भटक ही तो रहे हैं ।

इसे सम्हालते रहने वालोंको अपनी सुध-बुध भूल जाती है और जब अपनापन, अपना अहं इस कन्हाईमें समाहित हो गया तो माया देवी वहाँ जाकर क्या करें ?

एक बार माया भगवतीको भी गर्व हो गया– 'मुझसे भला कोई बच सकता है ।'

देवर्षि नारद दीख पड़े उन्हें । उनके समीप साकार होकर पहुँची तो देवर्षिने दोनों हाथ जोड़ लिये– 'भगवती ! आप मुझपर कृपा रखो ! मैं आपसे बहुत डरता हूँ ।'

'अच्छा बात ! आपको अभय दिया ।' मायादेवीने कहा– 'पर आप त्रिभुवनमें भटकते रहते हो, कोई ऐसा आपको मिला कि जो बिना समाधि लगाये भी मेरे प्रभावसे बचा रह सकता हो ?' '

नारदजी भगवानके मन हैं । श्रीहरि गर्वहारी हैं । अतः देवर्षि समझ गये । बोले– 'देवि ! आपकी शक्ति अनन्त है । समाधि लगाकर भी योगियोंके परमाराध्य शंकरजी ही कहाँ आपसे अप्रभावित रहे; किन्तु व्रजके गोप बालकोंकी बात मैं कुछ कह नहीं सकता ।'

'गोपोंके बालक ? हुँह ।' मायादेवीने मुस्कराकर प्रस्थान किया । वे वृन्दावन पहुँचीं तो पहिले तो वहाँ प्रवेश ही अशक्य लगा; किन्तु वे नन्दात्मजा भी तो हैं । अतः योगमाया रूपसे उतरीं अदृश्य रहकर । संयोगसे एक अकेला गोपकुमार उन्हें मिल भी गया । अब उसपर उन्होंने अपना प्रभाव डाला तो

वह प्रभाव उन्हें स्वयं लगा कि उनकी इच्छानुसार न पड़कर, कुछ दूसरे ही प्रकारका पड़ने लगा है ।

गोपकुमारको लगा कि उसे तीव्र क्षुधा लगी है और वह बहुत थक गया है । उसके सम्मुख भोजनसे भरे बहुत-से छीके टँगे हैं वृक्षोंसे ।

उसने कोई छीका नहीं छुआ । इधर-उधर देखा, कोई दीखा नहीं तो बैठ गया । सिर पकड़कर फूट-फूटकर रोने लगा । बस हो गयी मायाकी शक्ति । वे भागीं ऊपर गगनमें । उन्होंने पीताम्बरधारी मयूर-मुकुटीको दौड़े आते देख लिया था । वह कमलनयन अपनोंके अश्रु कहाँ देख पाता है ।

'तू रो क्यों रहा है ?' कन्हाईने आते ही उसे अंकसे लगाया और अपने पटुकेसे उसके आँसू पोंछे ।

'तू भूखा है । सब छीके तुम सबने यहाँ छोड़ रखे हैं और पता नहीं कहाँ भटक रहे हो ।' उस गोपकुमारने उलाहना दिया— 'मैं गायें घेरने गया तो तुम सब किधर चले गये थे ? मैं तुझे ढूँढ़-ढूँढ़कर थक गया । तू झटपट बैठ और पहिले कुछ खा ।'

उसकी अपनी क्षुधाका तो उसे ध्यान भी नहीं आया था । उसे भूख लगी, भले मायाके प्रभावसे लगी हो तो उसे एक ही बात सूझी— 'कन्हाई भूखा है । वह वनमें भटक रहा है । अब उसे कहाँ ढूँढ़ूँ ।'

माया देवी बहुत ऊपरसे हाथ जोड़कर सिर झुका रही थीं । श्रीकृष्णके निजजनोंपर उनका प्रभाव नहीं पड़ता तो इसमें उनका कोई अपमान नहीं है । नन्द-नन्दन तो उनके अग्रज हैं । यह उनके अग्रजकी महिमा है । इसे तो वे स्वयं अक्षुण्ण रखनेको उत्सुक हैं ।

आपमें महत्त्वाकांक्षा या लोकेषणा जागती है तो आप उसे कन्हाईको क्यों समर्पित नहीं कर सकते । उसे भी कन्हाईको समर्पित कीजिये । आप केवल इस व्रज-युवराजको सम्हालते रहिये । इसकी स्मृति ही आपको सम्हाल लेगी ।

इसकी स्मृति आती रहेगी तो आप कामना पिशाची और लोलुपा लोकेषणा राक्षसीसे सुरक्षित रहेंगे ।



१४. आपके अभ्यास

आपके जीवनमें कन्हाईकी प्रीति-भक्ति कठिन दीखती है आपको, यह बात तो ठीक है । भक्तिको सभी शास्त्र और सन्तोंने अत्यन्त दुर्लभ कहा है । कोई कहता है–

सीस उतारो भुइँ धरो तापर राखो पावँ ।

तो दूसरेका कहना है–

तरवारकी धार पै धावनो है ।

आप जानते हैं कि जो रत्न जितना दुर्लभ होता है, वह उतने अधिक श्रम एवं सावधानी-पूर्ण अन्वेषणसे प्राप्त होता है; किन्तु सृष्टिका एक दूसरा भी नियम है कि जो वस्तु जितनी आवश्यक होती है, वह उतनी सुलभ होती है ।

हमारे लिए वायु सर्वाधिक आवश्यक है तो प्रकृतिने उसे सर्व सुलभ कर रखा है । इसी प्रकार यदि मनुष्य जीवनका सहज उद्देश्य आवागमनसे छूटना है, तो उसका साधन अत्यन्त कठिन नहीं होना चाहिये ।

जीवनमें श्रीकृष्ण-प्रेमकी उपलब्धि तो बहुत कठिन है; क्योंकि यह कन्हाई प्रेमसे ही प्राप्त होता है और–

नायं सुखापो भगवान् देहिनां गोपिकासुतः ।
ज्ञानिनां आत्मभूतानां यथा भक्तिमतामिह ।।

भा. १०-९-२१

ये गोपिका-नन्दन शरीरधारियोंके लिए, यहाँ तक कि आत्मतत्त्वज्ञ ज्ञानियोंके लिए भी सुखसे मिलने वाले नहीं हैं । ये नटवर तो इसी जन्ममें, इसी लोकमें केवल भक्ति-सम्पन्नोंको ही सुखपूर्वक मिलते हैं ।

इसमें आपको निराश होनेकी आवश्यकता नहीं है । यो गोपिकासुत भले सुखाप न हों, इनका नाम लेनेमें तो किसीको कभी, कहीं कठिनाई होती

नहीं और नाम इनसे कम महत्त्वका नहीं है । नाम इनसे उन्नीस नहीं, बीस है ।

राम न सकहिं नाम गुन गाई ।।

— रा.च.मा. १।२५-८

नाम आपको इस नाम-रूपात्मक प्रपञ्चमें भटकनेसे सहज मुक्त कर दे सकता है । इसमें किसी शास्त्र-सन्तने आपत्ति नहीं की है ।

यह भी नहीं है कि मन लगाकर ही भगवन्नाम लिया गया हो अथवा कोई त्यागी-तपस्वी, संयमी-सदाचारी बनकर ही भगवन्नाम ले, तभी उसका उद्धार होगा । आप जानते हैं कि अजामिल त्यागी-तपस्वी, सदाचारी-धर्मात्मा नहीं था । उसने जान बूझकर भगवन्नाम लिया भी नहीं था । उसने तो अपने पुत्र 'नारायण' को पुकारा था ।

'उसने किसे पुकारा, यह प्रश्न नहीं है ।' विष्णु-दूतोंने यमदूतोंको डाँट दिया— 'प्रश्न यह है कि वस्तुतः नारायण नाम किसका है ? उसके पुत्रको इस नामसे चार-छः वर्षसे पुकारा जाता रहा तो यह उसके पुत्रका हो गया ? यह हमारे स्वामीका नित्य नाम है, इतना भी तुम्हें पता नहीं ? उसका पुत्र तो हड्डी-मांस-चमड़ेका लोथड़ा है; किन्तु यह 'नारायण' शब्द चिन्मय है या नहीं ? यह अपने नित्य नामीसे अभिन्न है, इसे समझो ।'

यमदूतोंको समझनेमें जो कोर-कसर रही भी हो उसे यमराजने समझा दिया था । अतः वे फिर वैसी भूल कभी नहीं करेंगे ।

'अजामिलने मरते समय 'नारायण' नाम लिया था ।' यह आपकी बात ठीक है । केवल भगवन्नाम किसी भी साधनहीन व्यक्तिको तभी मुक्त कर सकता है, जब मरते समय लिया गया हो ।

मरते समयका अर्थ श्वांस-निकलते समय ही नहीं है । मरते समयका अर्थ है मूर्छित होनेसे पहिलेका क्षण, अर्थात् नामोच्चारणके बाद मनमें कोई और विचार न आया हो ।

यह बात भी सच है कि उस समय प्रयत्न करनेकी शक्ति या चेतना प्रायः लोगोंमें नहीं होती । इसलिए अप्रयास नामोच्चारणका अभ्यास आपको करना है । यह अभ्यास ही आपको जन्म-मरणसे मुक्त कर दे सकता है ।

शत-प्रतिशत आश्वासन तो किसी बातका कभी भी दे पाना शक्य नहीं होता । लोग हार्ट फेल होनेसे या दुर्घटनामें भी अचानक मरते हैं । एकने पूछा— 'जो लोग सोते-सोते मर जाते हैं, उनकी क्या गति होती है ?'

सोते-सोते स्वाभाविक मृत्यु कदाचित् ही होती है । दूसरोंको भले पता न लगे, मृत्युसे पूर्व प्राण-शरीरसे निकलते समय जो घबड़ाहट होती है, उसमें निद्रा प्रायः टूट जाती है, चाहे क्षण-दो क्षणको टूटी हो और वह व्यक्ति चीख या बोल न सका हो ।

नींदकी गोलियाँ खाकर मरने वाले, सम्भव हैं, उन गोलियोंके विषसे मूर्छामें मरते हों, । मैं नहीं जानता कि देह त्यागसे पूर्व उन्हें कोई घबड़ाहट होती है या नहीं ।

मैंने उत्तर दिया— 'मृत्युके समय प्राणी स्वप्नावस्थामें हो तो स्वप्नके समान या उसके अनुसार गति होगी । यदि वह गाढ़ सुषुप्ति या मूर्छामें है तो यह अवस्था घोर तमोगुणकी होनेके कारण उसे जड़ योनि अर्थात् पत्थर आदि होना चाहिये ।'

अब प्रश्न उठता है कि मृत्युके समय भगवन्नाम आवे कैसे ?

यह हो सकता है कि आपके सामान्य अभ्याससे । मृत्युके समय प्रायः लोगोंको हिचकी आती है । जम्हाई या छींक भी आ सकती है अथवा भय लग सकता है, घबड़ाहट हो सकती है । जीवनमें भी ये अवस्थाएँ आती ही रहती हैं । अतः जब इनमें-से कोई बात हो, आपके मुखसे अपने-आप भगवन्नाम निकले, इसका आप अभ्यास करें ।

आप जागतेमें अचानक चौंकते हैं या डर जाते हैं । स्वप्नमें भी ऐसा होता है । उस समय आपके मुखसे भगवन्नाम निकलना ही चाहिये ।

यह प्रारम्भमें नहीं होगा; किन्तु आप यदि दृढ़ निश्चय कर लेंगे और न होनेपर दुःखी होंगे तो शीघ्र इन दशाओंमें भगवन्नाम निकलने लगेगा ।

आप जिस बातके होनेसे बहुत दुःखी होते हैं, वह आपके जीवनसे चली जाती है । जिस बातके न होनेसे दुःखी होंगे, वह अवश्य शीघ्र होने लगेगी । जो लोग कभी देरसे जागनेपर दुःखी होते पश्चाताप करते हैं, उनकी नींद शीघ्र टूटने लगती है ।

एक बालकने आकर एक दिन रोते-रोते कहा– 'बाबूजी, मैं रात स्वप्न देखते हुए बहुत डरा; किन्तु मुझसे 'गोविन्द' को पुकारा नहीं गया । मैं ऐसे ही मर जाऊँगा और मुझे उस समय भी 'गोविन्द' स्मरण नहीं आवेंगे ?'

मैंने उसे आश्वासन दिया– 'तुम्हारा यह क्षोभ बना रहा तो स्वप्नमें भी तुम 'गोविन्द' को डरनेपर पुकार सकोगे ।'

थोड़े दिनों पीछे उसने बतलाया– 'अब मैं स्वप्नमें डरनेपर 'गोविन्द' को पुकारता हूँ । मरते समय भी भय लगा तो पुकारूँगा । वे आवेंगे ?'

'उनका आना-न-आना तो उनके वशमें है । वे क्या करेंगे, यह वे ही जानें । मैं झूठा आश्वासन देनेके पक्षमें नहीं हूँ । अतः मैंने कहा– 'वे आवें या न आवें, उनका नाम लेते जो मरेगा, उसके समीप आनेकी भूल यमदूत तो कर नहीं सकते । 'गोविन्द' को पुकारते जो देह त्यागेगा, उसके समीप उस समय गोविन्द न भी आये तो वह उनके समीप आवश्य जायेगा ।'

आपसे छींकते, जम्हाई लेते, हिचकी आनेपर, चौंकने या डरनेपर भगवन्नाम न निकले तो आपको दुःखी होना चाहिये । आप प्रयत्न करते रहेंगे और कभी नाम न निकलनेपर दुःखी होंगे तो आपको इन अवस्थाओंमें नाम लेनेका अभ्यास हो जायेगा । यह अभ्यास हो जायेगा तो इस अभ्याससे ही आपके जन्म-मरणसे छूटनेकी सम्भावना पक्की हो जायेगी ।

राजा परीक्षितको श्रीमद्भागवतका उपदेश करते समय शुकदेवजीने प्रारम्भमें ही यह बात कही–

एतावान् सांख्ययोगाभ्यां स्वधर्मपरिनिष्ठया ।
जन्मलाभः परं पुंसामन्ते नारायण स्मृतिः ॥

– भा. २।१।६

ज्ञान, योग तथा अपने वर्णाश्रम धर्मका भली प्रकार निष्ठायुक्त पालन एवं मनुष्य जन्मका भी इतना ही पुरुषको परम लाभ प्राप्त हो सकता है कि अन्तिम समय नारायणका स्मरण हो ।

अन्तिम समय नारायणका अथवा उनसे सर्वथा अभिन्न उनके नामका स्मरण, उच्चारण हो जाय, इससे बड़ा लाभ दूसरा कुछ नहीं है । दूसरा कोई

साधन या ज्ञान इससे बड़ा लाभ कुछ नहीं दे सकता ।

यह लाभ आपके लिए दुर्लभ अथवा दु:साध्य वहीं है यदि आप जीवनमें, विशेषत: जीवनके आकस्मिक संयोगोंमें भगवन्नामके स्वतः उच्चारित होनेका अभ्यास कर लेते हैं ।

अप्रयास उच्चारित होनेवाले शब्दोंमें कुछ लोगोंका कोई 'तकिया कलाम' होता है । इस 'तकिया कलाम' के लिए कोई दूसरा प्रचलित शब्द पता नहीं क्यों नहीं है । कहीं ऐसा तो नहीं है कि संस्कृत जैसी अत्यन्त परिष्कृत भाषा बोलनेवाले इस देशमें इस शब्दावृत्तिकी दुर्बलता हो ही नहीं । यह प्रवृत्ति ही मुसलमान आक्रमणकारियोंके साथ आयी ।

कुछ भी हो, तकिया कलाम रखनेवाले लोग समाजमें होते हैं । एक वाक्यके पश्चात् कोई शब्द अकारण बोलना ही नहीं होता, कभी-कभी तो एक-दो शब्दोंके बाद ही वह आवृत्ति शब्द दुहराया जाता है । फलतः बोलनेवाले का तात्पर्य समझना कठिन होता है ।

तकिया कलाम (आवृत्ति शब्द) पता नहीं कैसे और क्यों स्वभावमें आ जाता है; क्योंकि यह दोष है, इसे कोई अच्छाई स्वीकार नहीं करता ।

ऐसा भी नहीं है कि यह आवृत्ति शब्द सदा उत्तम ही हो । जैसे मैंने कुछ लोगोंका आवृत्ति शब्द 'गोविन्दाय नमो नमः' 'रामजीकी इच्छासे' 'हरये नमः' सुना है, वैसे ही कुछ लोगोंको 'बापजी' 'झाकोनी' क्या नामसे 'बाबारे' कहते या किसी गाली (विशेषतः साले) की झड़ी लगाते भी सुना है । कुछ लोग 'मैंने कहा' की भी आवृत्ति करते रहते हैं ।

जैसे कुछ लोग राम या कृष्णके नामसे चिढ़ते दीखते हैं, वे इसलिए बनावटी रूपसे चिढ़ते हैं, जिससे उन्हें चिढ़ानेके लिए ही दूसरे वह भगवन्नाम लें, उसी प्रकार यदि बार-बार भगवन्नाम उच्चारित होता रहे, यह उद्देश्य लेकर कोई 'गोविन्दाय नमो नमः' या 'जय रामजी' जैसा आवृत्ति शब्द अपनाता हो तब भी एक बात है; किन्तु अधिकांश आवृत्ति शब्द तो व्यर्थ होते हैं ।

यह एक बुरा अभ्यास है । इसे प्रयत्न पूर्वक छोड़ ही दिया जाना चाहिये । आवृत्ति शब्द भगवन्नाम भी हो तो भी उसका समर्थन नहीं किया जा सकता । उसके स्थानपर जब वोलना न हो तब जीभ शान्त न रहे, उपांशु

जप स्वतः होने लगे, यह अभ्यास बहुत महत्त्वपूर्ण है और प्रयत्नपूर्वक अपना लेने योग्य है ।

आप आवृत्ति शब्दके अभ्याससे यह आशा नहीं कर सकते कि उसके कारण मरते समय भगवन्नामका उच्चारण होगा । ऐसा तो केवल उन लोगोंके लिए किसी प्रकार सम्भव है जो मरते समय किसी कारणसे बड़बड़ाने लगे हों; किन्तु बहुत कम लोगोंमें मरते समय प्रलापका लक्षण प्रकट हुआ करता है ।

सबसे अधिक लोग हिचकी लेकर या भय पाकर देह त्याग करते हैं । जम्हाई भी उस स्थितिमें कम लोगोंको आती है । खाँसी आनेकी सम्भावना रहती है; किन्तु खाँसी या हिचकीके समय लम्बे भगवन्नाम नहीं लिये जा सकते । प्रणव अथवा राम नामका भी स्पष्ट उच्चारण कठिन ही है; किन्तु स्पष्टोच्चारणकी आवश्यकता भी नहीं है । उस समय नामोच्चारणका प्रयत्न हो, यह अभ्यास करना चाहिये । इससे जो अस्पष्ट नामोच्चारणकी ध्वनि हो भी, उसमें भी नाम-स्मरण तो हो ही जाता है ।

दृढ़ और दीर्घ कालीन अभ्यासकी शक्ति महान है । गीता-प्रेसके संस्थापक दिवंगत सेठ श्रीजयदयालजी गोयन्दका जीवनमें ठीक सन्ध्याकालमें सन्ध्या करनेके व्रती थे । कैसा भी आवश्यक कार्य चल रहा हो, सन्ध्याकालमें उसे छोड़कर वे सन्ध्या करने बैठ जाया करते थे ।

जीवनके अन्तिम महीनोंमें वे कई महीने अत्यधिक रुग्ण रहे । तब भी समयपर सन्ध्या कर लिया करते थे । जब वे मूर्छित रहने लगे, तब भी सन्ध्याकालमें उनका शरीर स्वतः उठकर बैठ जाता था और उनके हाथकी अंगुलियाँ ऐसे चलने लगती थीं जैसे वे जपके समय चलती हैं ।

अभ्यास पहिले तो प्रयत्नपूर्वक करना पड़ता है; किन्तु दृढ़ हो जानेपर वह स्वतः होता रहता है । जैसे साइकिल चलाना सीखनेवालेको सावधान रहना पड़ता है । दृष्टि सामने रखनी पड़ती है । हाथ हैण्डिलोंपर स्थिर रखने पड़ते हैं; किन्तु अभ्यास सध जानेपर यह कुछ आवश्यक नहीं होता लोग इधर-उधर देखते, किसीसे बात करते, एक या दोनों हाथ हैण्डिलोंसे उठाकर भी साइकिल चलाते रहते हैं ।

कर्मेन्द्रियोंके द्वारा एक बार कर्म प्रारम्भ हो जानेपर मन अन्यत्र चला भी जाय तो वे कर्म चलते रहते हैं । इसीलिए जप और पाठ बिना मन लगे भी होता रहता है; किन्तु वह व्यर्थ होता होगा, आप इस भ्रममें मत पड़ें । शब्दमें अचिन्त्य शक्ति होती है । भगवन्नाम तो नित्य चिन्मय शब्द है । उसका बिना मनके भी उच्चारण अपना दिव्य प्रकट करता है ।

आप सदा मन लगाकर ही भोजन नहीं करते । अनेक बार भोजन करते समय आप कोई आवश्यक चर्चा या चिन्तनमें लगे होते हो । ऐसी अवस्थामें भोजन करनेसे आपकी क्षुधा मिट जाती है या नहीं ? उस भोजनसे आपके शरीरको शक्ति मिलनेमें क्या कुछ कसर रहती है ?

दार्शनिकोंने एक प्रश्न उठाया है । जब एक स्थानपर कई लोग सो रहे हों और गाढ़ निद्रामें हों तो जिसका नाम लेकर पुकारा जाता है, वही क्यों जागता है ? उस पुकारको यदि वह जागकर सुनता हो तो गाढ़निद्रामें ही नहीं था और गाढ़-निद्रामें था तो सुना किसने ? उस समय तो श्रवणेन्द्रिय सुषुप्त थी ।

इसका उत्तर वे शब्दकी अचिन्त्य शक्ति कहकर देते हैं । मनोवैज्ञानिकोंका जो वर्ग मनके चार भाग मन (वहिर्मन) बुद्धि (निर्णायक-मन) चित्त (संस्कारात्मक-मन) और अहंकार (संचालक-मन) मानता है, उसका कहना है कि अहंकार (संचालक-मन) कभी सोता नहीं । सुषुप्तिमें भी यही नाड़ियोंमें रक्त, श्वांस, पाचन एवं मल-परिपाककी क्रिया करता है । इसीके कारण केश और नख बढ़ते रहते हैं । जब निर्विकल्प समाधिमें सम्पूर्ण चित्त वृत्तिका निरोध हो जाता है तो अहंकारका भी निरोध हो जानेसे श्वास-प्रश्वास, हृदयका धड़कना, रक्ताभिसरण आदि क्रियाएँ भी रुक जाती हैं ।

शरीरके नामके साथ इस अहंकारका तादात्म्य होनेसे सुषुप्तिमें भी उस नामकी पुकार यह अहंकार सुन लेता है और यही मनके दूसरे भागों और इन्द्रियोंको सावधान कर देता है ।

आप जिन अभ्यासोंको— जपादिको बिना मनके होता मानते हो, उनका संचालन भी इस अहंकारकी ही प्रेरणासे होता है । यही प्रारम्भ किये कार्यमें कर्मेन्द्रियोंको लगाये रहता है । इसलिए आपके मनके संयोगके बिना भी वे

कार्य आपसे होते रहते हैं ।

यह सर्वथा वस्तुतथ्य है कि मनके संयोगके बिना शरीर कुछ करता नहीं– कर नहीं सकता; किन्तु मनका यह संयोग सदा आपको पता लगता रहे, यह आवश्यक नहीं है । आपको कभी अपनी श्वास चलाने, हृदयकी धड़कन चलाने या अन्न पचानेमें अपने कर्त्तापनका अनुभव होता है ? लेकिन इनके कर्त्ता आप ही हो । इसी प्रकार जिसे आप बेमनसे हुआ जप या पाठ कहते हो, वह भी आपके ही द्वारा हो रहा है और वह व्यर्थ नहीं जायेगा ।

सबसे बड़ी बात यह है कि मृत्युके समय प्रायः यह आपका वहिर्मन जिसे आप मन कहते हो, ऐसी अवस्थामें नहीं होता कि जानबूझकर कोई कर्म या चिन्तन कर सके । उस समय तो यह प्रायः विक्षिप्त रहता है । बहुत थोड़े भाग्यशाली ऐसे होते हैं कि मरते समय भी उनका मन सावधान रहता है और बुद्धि जागृत रहती है ।

उस समय तो अभ्यास ही काम आ सकता है । जीवनमें जिस कार्यका, जिस चिन्तनका प्रगाढ़ अभ्यास किया गया है, वही प्रायः उस समय मनके द्वारा होता है । अतः कन्हाई तो उस समय ऐसे ही लोगोंको स्मरण आ सकता है, जिनके जीवनमें उसकी प्रीति दृढ़ हो गयी हो या जिनको जीवनमें प्रायः उसीका स्मरण रहता रहा हो ।

ऐसी अवस्था बहुत थोड़े लोगोंकी होती है; किन्तु आप जीवनमें अनायास चौंकने, डरने, खाँसने, जम्हाई या हिचकी के साथ कन्हाईके किसी नामके उच्चारणका अभ्यास थोड़े प्रयत्नसे कर ले सकते हो । यह अभ्यास कर लोगे तो मरते समय इसका नामोच्चारण होनेकी सम्भावना बन जायेगी ।

वह नामोच्चारण निश्चय अप्रयास, बिना मनके होगा; किन्तु उससे आपका भव-बन्धन कटनेमें कोई सन्देह नहीं है । अतः आप सावधानीसे, पूरे प्रयत्नसे अपना यह स्वभाव डाल लो ।



१५. आपके व्यसन

'आपके व्यसन क्या हैं ?' मैंने एक सज्जनसे पूछा ।

वे चिढ़कर बोले– मैं कोई व्यसन नहीं पालता । आपको क्या कोई व्यसन है ?'

उन्होंने उसी चिढ़से मुझसे पूछा; किन्तु उनकी आशाके विपरीत मैंने उत्तर दिया– "मुझे तो कन्हाईकी चर्चा करने और लिखनेका व्यसन है । दूसरा व्यसन है गंगाजलका । गंगाजी समीप हों तो मैं सर्दीमें भी गंगास्नान करना चाहता हूँ और यह न हो सके तो आचमनके लिए गंगाजल साथ रखना चाहता हूँ ।"

"ये भी कोई व्यसन हुए ।" वे बोले– "व्यसन होते हैं अफीम, शराब, गांजा, सिगरेट या जुआ खेलना ।"

सम्भव है आप भी व्यसन शब्दका यही अर्थ करते हों; किन्तु व्यसनका अर्थ है जो लौकिक प्रयोजनके बिना भी अपने लिए व्यस्त बनावे । व्यसनका अर्थ नशा और शौक तो है ही, अंग्रेजीमें जिसे 'हौबी' (Hobby) कहते हैं, वह भी व्यसन ही है ।

नशे तो सब त्याज्य हैं । भोजन इसलिए नशा नहीं है; क्योंकि भूख रोटी, चावल, पूड़ी आदि किसीसे मिट सकती है । आपको रोटी या चावल बहुत प्रिय हो सकता है; किन्तु वह न मिले तो आपका काम दूसरे खाद्य पदार्थोंसे भी चल सकता हैं; किन्तु चाय इसलिए व्यसन है, क्योंकि चाय न मिले तो उसका काम दूध या शरबतसे नहीं चलता ।

कुछ लोगोंको तो अमुक लेविलकी ही चाय पीनेका व्यसन होता है । दूसरी लेविलकी चायसे भी उनका काम नहीं चलता ।

इस प्रकार जुए जैसे कुछ कार्य ऐसे हैं कि उनका भी व्यसन हो जाता है । मनुष्य उसके बिना नहीं रह पाता ।

ऐसे कार्य या नशा आपकी स्वतन्त्रता नष्ट कर देते हैं । वे आपको

पराधीन बनाते हैं । किसी नशेकी स्थितिमें किये गये कार्य या समाधिका कोई महत्त्व नहीं है । नशा तम्बाकू हो या भांग, चाय, अफीम अथवा उससे भी तीव्र कोई आधुनिक नशा– वह आपके मनको अपने अधिकारमें कर लेता है ।

कोई बादशाह घोड़ेपर बैठे कहींसे अकेले लौट रहे थे । मार्गमें एक शराबीने उनसे नशेमें पूछा– "अरे ओ घोड़े वाले, घोड़ा बेचेगा ?"

बादशाह उस समय चुपचाप निकल गये । दूसरे दिन दरबारमें अपने सैनिक भेजकर उसे बुलवाया उसके आनेपर पूछा– "घोड़ा खरीदोगे ?"

वह बहुत डरा । उसने गिड़गिड़ाते हुए कहा– "मैं तो एक दरिद्र आपका गुलाम हूँ । वह घोड़ा खरीदनेवाला जो कल था, वह तो चला गया ।"

यह कहानी भले कल्पित हो, इसमें यह तथ्य है कि नशेके प्रभावसे जो होता है, उसका उत्तरदायी तथा फल भोक्ता वह व्यक्ति नहीं होता ।

पहिले भी लोग गांजेकी दम लगाकर या भंग पीकर ध्यान करते थे और आज भी ऐसे बहुत लोग हैं; किन्तु वे समझते ही नहीं कि निद्रा और समाधि में अन्तर ही यह है कि निद्रा अपने आप आ जाती है और समाधि अपने प्रयत्नसे लगती है । इसी प्रकार नशेके प्रभावसे जो एकाग्रता या मूर्छा होती है, वह आपकी शारीरिक-मानसिक हानि भले करे, उससे आपको कोई आध्यात्मिक लाभ नहीं हो सकता ।

लेकिन यहाँ मैं व्यसनोंकी हानि तथा व्यर्थताका विवेचन करने नहीं चला हूँ । मुझे तो सम्पूर्ण लौकिक व्यसनोंकी सबसे बड़ी हानि यही लगती है कि मनुष्य-जीवन जो अत्यन्त दुर्लभ है, उसके अमूल्य क्षण वे हमसे छीन लेते हैं । इतना ही नहीं, वे मनुष्यको अपने वशमें करके उसे कन्हाईसे विमुख बना देते हैं । भले यह विमुखता कुछ क्षणोंकी ही होती हो ।

आप जानते हैं कि मृत्युका कोई निश्चित समय नहीं है और यह भी निश्चित नहीं है कि मृत्युमें कुछ विलम्ब होगा ही । तब आप कैसे कह सकते हैं कि जब आप किसी व्यसनके प्रभावमें होंगे तो मृत्यु नहीं आ जायेगी और यदि ऐसी अवस्थामें मृत्यु हुई तो आपको जड़ताकी ही प्राप्ति होनेकी सम्भावना अधिक है । क्योंकि नशेके आवेशमें मनुष्य अपना विवेक तो यहीं खो चुका होता है ।

अभ्यासाद्रमते यत्र दुःखान्तं च निगच्छति ॥

गीता– १८।३६

अभ्यासके द्वारा जिनमें आनन्द आने लगता है और उससे वह दुःखोंसे छूटता है ।

जितने व्यसन हैं, सब अभ्याससे ही व्यसन बनते हैं; किन्तु उनसे मनुष्य दुःखोंसे छूटता नहीं, केवल कुछ कालके लिए अपनी चिन्ता भूले रहता है ।

इस प्रकार पीड़ाका अनुभव न होना तो स्नायु शून्य करनेवाली औषधियों तथा इन्जेक्शनसे भी होता है । ऐसे व्यसन कोई औषधि नहीं हैं । जो सामान्य भौतिक रोग-चिन्ताकी ही औषधि नहीं, तो भवरोगकी औषधि कहाँ से बन सकेगी ।

अतएव जीवनमें ऐसा अभ्यास करना आवश्यक है जो आपके ऐसे व्यसन बना दें जो सचमुच आपके दुःखोंका आत्यन्तिक विनाश कर सकें । जिससे आप दुःखोंसे सदाको छूट सकें ।

यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम् ।
तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम् ॥

गीता– १८।३७

जो प्रारम्भमें विषकी भाँति लगते हैं; किन्तु परिणाममें अमृतके समान होते हैं, वे अपनी बुद्धिकी निर्मलतामें होने वाले सुख सात्त्विक कहे गये हैं ।

सब नशे और जुएके समान प्रमाद रूप व्यसन तामसिक माने गये हैं और तमोगुणकी प्रधानताकी स्थितिमें मृत्यु होनेपर नरकादि अधोलोकोंकी प्राप्ति होती है–

अधोगच्छन्ति तामसाः ।

गीता– १४।१८

इस कारणसे सब तामसिक व्यसन तो त्याज्य ही हैं । लेकिन व्यसन चाहे सात्त्विक हों या तामसिक सहज स्वाभाविक नहीं होते । उन्हें अभ्यासके द्वारा व्यसन बनाना पड़ता है । ऐसी अवस्थामें सात्त्विक व्यसन अभ्यास द्वारा

अपनाये जाने योग्य हैं ।

व्यसन बनाये ही क्यों जायें ?

इसलिए कि 'होवी' के बिना मनुष्यका उत्साह साहस परिमार्जित नहीं होता और जब व्यक्ति एकाकी पड़ जाता है, विशेषतः वार्धक्यमें, तब उसके लिए समय काटना कठिन हो जाता है ।

पाश्चात्य संस्कृतिने साहस पूर्ण कार्योंकी प्रवृत्ति प्रचलित की । क्योंकि पाश्चात्य संस्कृति रजोगुण प्रधान है, उनके व्यसन– होवी भी उसीके अनुरूप हैं । समुद्र तैरना, दुर्गम पर्वतीय यात्रामें तथा ऐसे ही अति साहसिक कार्य उनमें प्रिय हैं और आजका शिक्षित वर्ग तो उनका अनुकरण करने एवं प्रशंसा करनेवाला है ।

भारतकी प्राचीन सात्त्विक संस्कृति साहस पूर्ण कार्योंकी प्रवृत्ति देती है और ऐसे कार्योंकी सामाजिक प्रतिष्ठा भी है; किन्तु इनको सात्त्विक रूप दे देती है ।

जब ट्रेन और मोटर मार्गोंकी सुविधा नहीं थी तो तीर्थ-यात्रा कितनी कठिन थी, कोई अनुमान कर सकता है । अब भी मुक्तिनाथके आगे दामोदर कुण्ड (नेपाल), मध्यमेश्वर आदि पर्वतीय तीर्थोंकी यात्रा कठिन ही है; किन्तु जब यात्रा प्रारम्भसे पैदल करनी पड़ती थी, मार्ग गहन वनसे जाते थे तो वह तीर्थ-यात्रा साहसिक यात्रा नहीं थी ? तीर्थ यात्राएँ तो भारतमें सदासे होती रही हैं ।

हिंगलाज (ब्लूचिस्तान– अब पाकिस्तानमें) की यात्रा जिन्होंनेकी है, उसकी कल्पनातीत कठिनाई वही समझ सकते हैं । अब तो यह तीर्थ अगम्यप्राय हो गया है ।

जप करते रहना, कठोर शीतमें भी माघ महीनेमें प्रयागमें गंगा-यमुनाके मध्यके क्षेत्रमें रेतपर जैसे रहना– ये अनेक लोगोंके व्यसन हैं । सैकड़ों व्यक्ति नियमपूर्वक प्रतिवर्ष कल्पवास (माघमें प्रयागमें गंगा-तटपर निवास) करते हैं ।

कार्तिक मार्गशीर्ष, माघ मास उत्तर भारतमें शीतकालके होते हैं । इनमें सूर्योदयसे पूर्व गंगामें या अन्य तीर्थ पुष्करादिमें सहस्रों स्त्री-पुरुष स्नान करते हैं ।

देशमें ऐसे मन्दिरोंकी संख्या सहस्रोंमें है जिनमें प्रातःकालीन मंगला-आरतीमें कुछ लोग वर्षमें सभी ऋतुओंमें, सभी प्रकारके मौसममें, बरसते पानीमें भी प्रतिदिन पहुँचते ही हैं ।

आजकलके आधुनिकतम-साधन जुटाकर कोई साहसिक यात्रा कर लेना एक बात है; किन्तु कठिन पर्वतीय तीर्थोंकी पैदल चढ़ाई यात्रा करते वृद्ध; रोगी स्त्री-पुरुषोंको हाँफते, उठते-बैठते यात्रा करते देखने वाला उनकी श्रद्धाको शीश झुकाये बिना कैसे रह सकता है ? ऐसे श्रद्धालु तीर्थयात्री आपको किसी भी कठिन तीर्थकी यात्रा करने आप जब जायें, आपको मिल जायेंगे ।

तीर्थ यात्रा, अर्चन-पूजन आदि हमारे पवित्र व्यसन हैं । लम्बी दूरीसे, यहाँ तक कि गंगोत्तरी या गोमुखसे गंगाजल ठेठ दक्षिण-भारतमें रामेश्वरपर चढ़ाने लोग ले जाते हैं ।

इसी प्रकारके अनेक धार्मिक अनुष्ठान हैं । कुछ तो दैनिक किये जाते हैं और वर्षों तक चलते हैं । व्रजमें गिरिराज गोवर्धनकी दण्डवती-परिक्रमा ही नहीं, एक स्थानपर एक सौ आठ दण्डवत करके तब आगे बढ़ने वाले भी कई लोग वहाँके परिक्रमा-मार्गमें मिल जायेंगे ।

वृन्दावन, मथुरा, गोवर्धन, अयोध्या आदि तीर्थोंकी प्रतिदिन नियमसे परिक्रमा करने वाले थोड़े लोग नहीं हैं । इसी प्रकार वाराणसी, प्रयाग आदि तीर्थोंमें प्रतिदिन तीर्थ-स्नान करने वाले लोगोंकी संख्या भी बहुत बड़ी है । श्रीसनातन गोस्वामी बहुत वृद्ध होनेपर भी नित्य परिक्रमा करते थे ।[१]

वृन्दावन, नवद्वीप जैसे स्थानोंमें बहुत लोग हैं जो नियमपूर्वक एक लाख नाम-जप प्रतिदिन करते हैं । इससे अधिक तीन लाख नाम-जप प्रति दिन करनेवाले महापुरुष भी हुए ही हैं । आप साधु-महात्मा, आस्तिक, साधक तथा साधारण धार्मिक गृहस्थोंको देखें तो उनका पूरा ही वर्ग लगभग ऐसा मिलेगा जो नियमसे कोई धार्मिक कृत्य प्रतिदिन अथवा वर्षके अमुक दिनोंमें अवश्य निर्वाह करते हैं ।

---

१. जयदयाल डालमियाकी माँ का शरीर मार्गशीर्ष शुक्ल १४ को वाराणसीमें गया था । उस दिन भी लगभग ४०० सीढ़ी उतरकर ब्रह्म मुहूर्तमें उन्होंने गंगा स्नान किया था ।

जैन सम्प्रदायमें तो तप-व्रत बहुत प्रचलित हैं । उनके मुनि ही नहीं, गृहस्थ भी अनेक व्रत करते ही रहते हैं ।

वानप्रस्थ, सन्यासमें परिव्राजकवृत्तिशील लोग नियम-संयम ही तो पालन करते हैं, यह सब श्रद्धा-प्रेरित कर्म पुण्य समझकर किये जाते हैं । इनमें सकाम भावसे-लौकिक लाभके लिए ही सब लोग तीर्थ यात्रा, जप, व्रतानुष्ठानादि नहीं करते । निष्काम भावसे करने वालोंकी संख्या थोड़ी नहीं है ।

इसीमें आप रासलीला, रामलीला, कथा-कीर्तनको भी सम्मिलित कर लें । आप कह सकते हैं कि कथा-वाचक तथा मण्डली वालोंकी यह आजीविका है और इनके आयोजक ऐसा आयोजन लोकेषणा अथवा किन्हीं लौकिक स्वार्थोंके कारण करते हैं; किन्तु इनके दर्शक सब केवल मनोरञ्जनके ही लिए नहीं आते । उनमें लीला-दर्शन, कथा, श्रवण, कीर्तनको श्रद्धापूर्वक जीवन-व्रत बनाने वालोंकी संख्या भी छोटी नहीं होती ।

सच बात तो यह है कि आध्यात्मिक निष्ठा एवं प्रवृत्तिसे योग-ध्यान, जप-तप, कीर्तन-कथा, पूजा-पाठ, तीर्थ यात्रादि जितने साधन हैं, वे यदि सकाम भावसे नहीं किये जा रहे हैं तो सब पवित्र व्यसन हैं । वे केवल श्रम या समय काटने वाले व्यसन नहीं हैं । वे ऐसे व्यसन हैं जो केवल आपको व्यस्त ही नहीं बनाते, आपका अन्तःकरण शुद्ध करते हैं, आपको परमात्माके समीप करते हैं और समाजमें भी शान्ति, सात्विकताका प्रसार करते हैं ।

आपमें ऐसा कोई सात्त्विक व्यसन है या नहीं ? यह कोई ऐसा कार्य नहीं है जो लोकोत्तर महापुरुष अथवा त्यागी, विरक्त लोग ही कर सकते हों । यह तो एक ऐसा मनोरंजन भी है, जिसे अनेक नारियाँ एवं पुरुष सहज भावसे करते हैं ।

मैं ऐसी महिलाओं तथा पुरुषोंको जानता हूँ जिनका व्यसन कोई तीर्थ-परिक्रमा, तीर्थ-स्नान मन्दिर-दर्शन, कथा श्रवण अथवा नाम-कीर्तन है । ऐसे लोग देशमें इतने अधिक हैं कि आप भी उनसे अपरिचित नहीं होंगे । अवश्य ऐसे कुछ लोगोंको आप भी जानते ही होंगे ।

ऐसे लोगोंमें कोई विशेषता होती है ?

ऐसे लोगोंकी न कोई सींग-पूँछ निकलती न, उनके साहसपूर्ण कार्य

समाचार पत्रोंमें चमकते हैं । व्यसन प्रायः समय मात्र नष्ट करते हैं, यदि वे सात्त्विक न हों । सात्त्विक व्यसन कमसे कम उतने समय जब तक उनका आवेग रहता है, हृदयको श्रद्धासे पवित्र रखते हैं, सांसारिक चिन्ताएँ शान्त रखते हैं और संसारमें सात्त्विकताका प्रसार करते हैं । इसे आप कम मानते हैं ?

मनुष्य संसारके मोहपाशमें जकड़ा है । मैं-मेरोंके स्वार्थी साधनमें ही रात-दिन लगा है । इस जकड़नसे ये सात्त्विक व्यसन उसे श्वास लेनेका अवकाश देते हैं । उसका मोहपाश कुछ न कुछ शिथिल पड़ता है ।

इस भव-पाशको छिन्न करनेके लिए तो व्यसन भी उतना ही सशक्त चाहिये । आप जितने देर कन्हाईकी चर्चा करते, सुनते या इस चपलके सम्बन्धमें कुछ सोचते हैं, उतनी देर संसार या माया आपसे दूर रहती है या नहीं ? इसीको आप अपना व्यसन बना ले सकें तो आप जीवनमें ही माया-मुक्त । तब तो आप कन्हाईके और यह व्रजेन्द्र-नन्दन आपका ।

यह न हो सकता हो, तो भी अपने चित्तको ऐसा बनाइये कि इसकी कथा-चर्चा प्रिय लगने लगे । आप जानते हैं कि हॉकी या क्रिकेटका व्यसन बहुत कम लोगोंको होता है; किन्तु इन खेलोंके मैचका विवरण सुननेका व्यसन ? लोग आवश्यक कार्य तथा भोजन-जलपान भी भूलकर रेडियोके पास जमे रहते हैं ।

इस विवरण को सुननेसे कोई लाभ लौकिक या पारलौकिक आप बता सकते हैं ? यह केवल व्यसन है या नहीं ? इतना कुतूहल, उत्सुकता यदि कन्हाईकी चर्चा-कथा-श्रवणकी हो तो वह व्यसन इस खेल-चर्चा श्रवण जैसा ही व्यर्थ होगा ?

आप उतना प्रबल व्यसन मनमें न भी जागृत कर सकें तो भी सामान्य सात्त्विक व्यसन अपनानेका प्रयत्न अवश्य करें । सात्त्विक व्यसन अर्थात् पुण्य कार्य, परोपकार, जप, पूजन, पाठादिका अभ्यास ।

स्मरण रखना चाहिये कि सात्त्विक व्यसन आरम्भमें व्यसन नहीं होते । ये कार्य तो आरम्भमें 'विषमिव' अप्रिय तथा कष्टकर लगते हैं । इनमें रुचि सात्त्विक लोगोंके संगसे, सत्-शास्त्रके अध्ययनसे इन कार्योंका महत्त्व बार-बार

श्रवण करनेसे ही उत्पन्न होती है ।

रुचि न होनेपर भी लोकलाजसे, किसीके कहनेसे दिखावेके लिए भी इनको करना उत्तम है । अन्ततः अनेक नशाओंका व्यसन भी तो लोग मित्रोंके आग्रह तथा लोक दिखावेके लिए प्रारम्भ करते हैं ।

बार-बार करनेपर यही अभ्यास यदि आवश्यक मानकर या श्रद्धापूर्वक किया जाय तो व्यसन बन जाता है ।

बार-बार अनिच्छापूर्वक या आवश्यकतासे विवश होकर कोई काम करते रहनेसे भी उसके करते रहनेका अभ्यास नहीं पड़ता और न वह व्यसन बनता । जैसे विद्यार्थी वर्षों तक पाठशालामें जाते रहते हैं; किन्तु उन्हें पाठशाला जानेका व्यसन कभी नहीं पड़ता । अभ्यासवश वे कभी वहाँ नहीं जाते ।

अतः आप श्रद्धा सहित कोई सात्त्विक कर्म अपने दैनिक जीवनमें अपना लें और उसे प्रयत्नपूर्वक करते रहें । उसे अपना व्यसन बन जाने दें । इससे वह आपके जीवनको पवित्र कर देगा और आपका पारलौकिक पथ प्रशस्त करेगा ।

कन्हाई आपका व्यसन बन सके, इसका नाम, इसकी कथा, इसका चिन्तन, इसकी चर्चा व्यसन बन सके तो आपका मानव-जीवन ही धन्य हो जाय ।



१६. आपका संग्रह

आप क्या संग्रह करते हैं ?

मैं जिस प्रकारके संग्रहकी चर्चा कर रहा हूँ, वह व्यसन है । आपकी सम्पत्ति तथा गृह-सामग्रीके संग्रहकी बात मैं नहीं कर रहा हूँ । समाजमें अधिकांश लोगोंको तो अपने तथा अपने परिवारके लोगोंका पेट-भरनेमें ही व्यस्त रहना पड़ता है । बहुत विकसित कहे जानेवाले देशोंकी भी यही दशा है । जीवन-निर्वाहसे अवकाश मिला तो कोई मनोरंजनकर लिया ।

मनोरंजनका ही एक रूप संग्रहशीलता भी है । आप जानते हैं कि प्रत्येक देशमें संग्रहालय होते हैं । ये केवल लोगोंका मनोरंजन ही नहीं करते, विशिष्ट शिक्षाओंके भी प्रमुख माध्यम होते हैं ।

ये संग्रहालय विभिन्न प्रकारके होते हैं और उनके पृथक्-पृथक् नाम होते हैं । अपने देशकी सरकारोंके अतिरिक्त विभिन्न संस्थाएँ तथा कुछ लोग अपना निजी संग्रहालय भी बनाते हैं ।

पुस्तकालय पुस्तकोंके संग्रहालय ही तो हैं और विश्वमें सबसे अधिक निजी संग्रहालय पुस्तकालयोंके ही रूपमें हैं ।

प्राचीन-अर्वाचीन भी मूर्तियोंके संग्रहालय सरकारोंकी ओरसे तो बनाये ही गये हैं, लोगोंके अपने मूर्ति-संग्रह भी हैं । बहुधा ऐसे संग्रहालयोंमें प्राचीन अस्त्र-शस्त्र, चित्र, सिक्के, पोशाकादिके भी संग्रहालय रहते हैं ।

सजीव प्राणियोंके संग्रहालयोंमें पशु-पक्षी होते हैं । आप इन्हें चिड़ियाघर कहते हैं । अनेक प्रकारकी मछलियों तथा जल-जीवोंके भी संग्रहालय हैं और वे भी राष्ट्रीय तथा निजी होते हैं ।

पेड़-पौधों, वनस्पतियों, औषधियों-छुपों आदिसे लेकर पुष्पों तथा कैक्टस जैसी कंटीली वनस्पतिके भी संग्रहालय बनाये जाते हैं ।

इसी प्रकार भूगर्भीय चट्टानों तथा विभिन्न धातुओंके, संग्रहालय हैं । पुरानी मोटरों, रेल इंजनोंके भी संग्रहालय हैं, राष्ट्रीय सरकारें और संस्थाएँ

जितने प्रकारके संग्रहालय बना पाती हैं, उनसे कहीं अधिक विविधता लोगोंके निजी संग्रहालयोंमें पायी जाती है ।

टिकट-संग्रह तो एक प्रसिद्ध व्यसन है । इसके अतिरिक्त लोगोंने दियासलाइयोंके लेबिलोंका या विभिन्न प्रकारके ताशोंका संग्रह किया है । पढ़ा तो यह भी था कि किसी सज्जनने तितलियोंका संग्रह किया है । मृत तितलियोंका अलबम बनाया है । विश्वकी अधिकांश (उनके अनुसार अब) छोटी-बड़ी तितलियोंके नमूने उनके पास हैं ।

राजस्थानके एक तत्कालीन नरेशने पेपर-वेट संग्रह किये । पीछे उन्हें राजभवनके द्वारोंकी चौखटमें जड़वा दिया ।

संग्रहकी यह प्रवृत्ति शौक है । शौक समय और श्रमके साथ कुछ धन भी खर्च कराता है । शौकका कोई कारण नहीं होता । लोग उसे पूरा करनेमें आनन्द पाते हैं । संग्रहका शौक तो एक गौरवानुभूति भी कराता है ।

आपको संग्रहका कोई ऐसा शौक है ? सामान्यतः तो ऐसा शौक वहिर्मुख बनाता है; किन्तु वह सात्विक भी हो सकता है और कन्हाईका भी चिन्तन कराने वाला हो सकता है ।

अनेक विद्वानोंको शास्त्र-संग्रहका शौक होता है । वे दुर्लभ शास्त्रीय-ग्रन्थ अनेक प्रयत्नोंसे तथा बहुत व्यय करके भी प्राप्त करते हैं । श्रीराम तथा श्रीकृष्णके सम्बन्धके ग्रन्थोंका संग्रह करनेवाली संस्थाएँ हैं ।

मानससंघ रामवन (सतना म.प्र.) में दिवंगत श्रीशारदा प्रसादजी जब तक थे, बराबर पता लगाकर-अध्ययनपूर्ण खोज करके राम-साहित्य, तुलसी-साहित्य जुटाते ही रहते थे । उनके शरीरान्तके पश्चात् उनका वह पुस्तक-संग्रह अस्त-व्यस्त हो गया ।

वृन्दावनमें इस प्रकार वैष्णव-साहित्य-संग्रहका प्रयत्न कई संस्थाएँ कर रही हैं । श्रीकृष्ण-जन्मस्थानका श्रीकृष्ण-शोध पीठ पुस्तकालय भी अपने ढंगसे प्रयत्न कर रहा है । लेकिन आपके चित्तको कन्हाईके उन्मुख रख सके, ऐसा कोई निजी संग्रह आपका है ?

श्रीकृष्ण सम्बन्धी धातु, पाषाणादि मूर्तियाँ तो बड़े संग्रहालयके योग्य हैं; किन्तु मिट्टी, रबड़, प्लास्टिकके ऐसे खिलौनोंके संग्रहकी ओर कभी ध्यान

दिया है ? काष्ठकी अथवा चीनी मिट्टीकी मूर्तियाँ भी इस प्रकारकी बहुत मिल सकती हैं । उनमें कलापूर्ण, अत्यन्त सुन्दर भी पर्याप्त निकलेंगी ।

ऐसे संग्रह श्रीराम, श्रीकृष्ण, भगवान् नारायण, शंकरजी, हनुमानजी, गणेश, शक्ति आदि किसीके भी बनाये जा सकते हैं ।

अपनी २० से २५ वर्षकी आयुके मध्य मैं सोचा करता था कि हिन्दी भाषाके श्रेष्ठ काव्योंमें-से छन्दों तथा गीतोंका एक उत्कृष्टम संकलन इस प्रकार किया जाय कि उनमें यत् किञ्चित् परिवर्तन करके एक सम्पूर्ण श्रीकृष्ण-चरित बन जाय । उसमें जहाँ जो वर्णन आवें वे उपलब्ध हिन्दी काव्यके श्रेष्ठतम अंशोंके संकलन हों ।

स्पष्ट है कि ऐसा संकलन अनेक शैलियोंका संग्रह होता; किन्तु उस समय तो मेरे पास चार-छः रुपये भी कदाचित् ही कभी जुट पाते थे और अपना कोई संग्रह बनाने योग्य स्थानकी सुविधा तो थी ही नहीं । यहाँ वहाँ भटकते रहने वाला व्यक्ति कोई संग्रह रखेगा कहाँ और साथ-साथ कहाँ ढोता फिरेगा । मैं तो अपनी लिखी पुस्तकें और लेखादि भी नहीं रख सका । रखनेका चाव भी कभी मनमें नहीं आया ।

श्रीकृष्णके सम्बन्धमें चित्र कम नहीं छपते हैं । कलेण्डरोंके रूपमें, पृथक, पत्र-पत्रिकाओंसे लेकर बीड़ीके लेबलों तकपर छपते हैं । ऐसे चित्रोंके भी संग्रहकी बात एकाध बार मनमें उठी; किन्तु यह काम भी मेरे वशका नहीं है, यह मैंने समझ लिया ।

श्रीशारदा प्रसादजीने श्रीराम-चरितमानसमें आये पौधों (वृक्ष-लता-तृणों) के नाम संकलित किये । पुष्पों, पत्रों, पशु-पक्षियों, वस्त्राभरणों, ऋषि-मुनियों तथा अन्य व्यक्तियोंके नामोंकी भी सूची बनायी । उनका विचार था कि जो वृक्षादि लग सकते हों वे रामवनमें लगायें जायें । जो पशु-पक्षी यहाँ जीवित रखे जा सकते हों, वे– पाले जायें । ऐसे ही जो वस्त्राभरण, अस्त्र-शस्त्र मिल सकते हों, यहाँके संग्रहालयमें रखे जायें । जो न मिल सकें उनके चित्र या मूर्तियाँ तथा ऋषि-मुनि आदि व्यक्तियोंकी वर्णनके अनुसार मूर्तियाँ बनवाकर रखी जायें ।

उन्होंने प्रयत्न प्रारम्भ भी किया था; किन्तु उनके साधन बहुत ही

सीमित थे और फिर तो उनका शरीर ही पूरा हो गया; किन्तु इस प्रयत्नमें, इन सूचियोंको बनानेमें उनका श्रीरामचरित मानसका उत्तम अध्ययन हो गया या नहीं ? उनका मन मानसके अन्वेषणमें ही तो लगा रहा ।

इसका अधिक महत्त्व नहीं है कि मनुष्य अपना संकल्पित प्रयोजन कितना पूर्ण कर पाता है । क्योंकि वह तो विश्व-नियन्ताकी इच्छापर निर्भर है । अतः

मा फलेषु कदाचन ।

गीता– २।४७

यह आदर्श तो है ही । महत्त्व इसका है कि संकल्प कैसा है और उसमें लगकर आपका चित्त कहाँ लगा रहता है ?

आप भी तो श्रीमद्‌भागवतमें वर्णित इस प्रकारके पदार्थों एवं व्यक्तियोंकी सूची बना सकते हैं । संस्कृत न भी जानते हों तो हिन्दी टीकाके माध्यमसे बना सकते हैं । मैंने एक सूची इस प्रकारकी यहाँसे छपे ग्रन्थ 'श्रीमद्‌भागवत परिचय' में दी है; किन्तु वह सूची सम्पूर्ण नहीं है । आप उसकी छानबीन करेंगे तो आपका मन श्रीमद्‌भागवतमें लगा रहेगा ।

श्रीकृष्णमें मन लगा रहे, इस प्रकारका कोई संग्रह आप कर सकतेहों तो करने योग्य है । यह संग्रह दूसरोंको भी शिक्षा, प्रेरणा देगा । अनेकोंको श्रीकृष्णके सम्बन्धमें जानकारी देगा । यदि संग्रहीत पदार्थोंका कथा-सन्दर्भ तथा कलाकारने कोई कथा या निर्माण-सम्बन्धी भूल की हो तो वह भी उसके साथ सन्दर्भ-वर्णनमें देते चलेंगे ।



१७. आपका आत्मालोचन

आप नियमपूर्वक अपनी आलोचना करते हो ? आपकी आलोचना दूसरा करेगा तो उसमें उसका द्वेष सम्मिलित रहेगा । उससे आपके चित्तमें रोष या उपेक्षा भले जागे; किन्तु कोई प्रेरणा जागनेकी सम्भावना नहीं है । अतः आप कमसे कम रात्रिमें सोते समय तो अपने दिन भरके कामका सिंहावलोकन कर लिया करें, इससे आपको अपनी त्रुटियाँ दूर करने और कन्हाईकी ओर बढ़नेमें सहायता प्राप्त होगी ।

आप दैनन्दिनी रखते हैं ? न रखते हों तो रखना अधिक उत्तम है।

मैंने एक विचित्र दैनन्दिनी देखी । वे सज्जन उसके प्रत्येक पृष्ठको दो भागोंमें लाल रेखासे विभक्त कर देते थे । पृष्ठका एक तिहाई भाग ऊपर और दो तिहाई भाग उस रेखासे नीचे होता था ।

वे कहते थे– 'यह मेरे जीवनकी रोकड़ बही है । लाल रेखासे ऊपरका भाग जमाका और नीचेका भाग व्ययका भाग है ।'

वे ऊपरके भागमें बहुत संक्षिप्त रूपसे उस दिनके उत्तम कामोंका, सत्संग, प्रेरणा-प्रद विचार, भगवच्चर्चा, चिन्तनका संकेत मात्र लिखते थे और नीचेके भागमें उस दिन क्रोधादिका, किसीके तिरस्कारादिका अथवा संसार-व्यवहारमें लिप्त होनेवाले संकल्पोंका उल्लेख करते थे ।

वे प्रतिदिन सोनेसे पूर्व अपनी दैनन्दिनीको भर लेते थे और सप्ताह भरके पृष्ठ पढ़ लिया करते थे । महीनेके अन्तिम दिन पूरे महीनेकी दैनन्दिनीके पृष्ठ उलट जाते थे ।

एक दूसरी दैनन्दिनी देखनेको मिली थी । उसमें प्रत्येक दिनके पृष्ठपर उस दिन आये उत्तम विचार मात्र लिखते थे । वे सज्जन कहते थे त्रुद्वियोंसे तो जीवन भरा पड़ा है । उस कचरेको एकत्र करके बार-बार उलटनेसे क्या मिलेगा ? इसमें जो कुछ उज्ज्वल, सुभित भी मिल जाला है, मात्र उसे संग्रह कर लेता हूँ ।'

वे सज्जन भी महीनेमें एक बार पूरे महीने भरकी अपनी दैनन्दिनीका पाठ कर जाते थे । उनके उत्तराधिकारियोंने सुरक्षित रखा होता तो उनकी दैनन्दिनी एक उत्तम संकलन थी । उससे दूसरोंको अच्छी प्रेरणा मिलती ।

एक तीसरी दैनन्दिनीमें केवल नाम थे । उसमें अनेक पृष्ठ कोरे थे । किसी पृष्ठपर कोई नाम पूरे पतेके साथ और किसीपर केवल नाम । किसी पृष्ठपर एकाधिक नाम भी थे ।

उनको दिनमें जो सन्त-सत्पुरुष मिलते थे, उनका नाम नोट कर लेते थे । आवश्यक हो तो पता भी । एक नाम कई पृष्ठोंपर भी उसमें थे । उनका कहना था– ''दैनन्दिनीके पृष्ठोंकी भाँति जीवनका वह दिन सूना रहा, जिस दिन कोई सत्पुरुष नहीं मिले । जीचनमें स्मरण करने योग्य तो सत्पुरुष ही हैं । वे स्मरण आते हैं तो उनके सद्‌गुण तथा उनसे प्राप्त प्रेरणा स्मरण आती है ।''

उनकी दैनन्दिनी देखकर मनमें आया कि दैनन्दिनीमें मौसमके अनुसार उस दिनकी कन्हाईकी क्रीड़ाका उल्लेख करना अपनी दैनिकचर्याके उल्लेखसे अधिक महत्त्वपूर्ण है; किन्तु मैं चाहकर भी अपने प्रमादके कारण कभी दैनन्दिनी नहीं रख सका ।

एक सज्जनकी दैनन्दिनीमें केवल समय नोट थे । उन्हें जब-जब अपने आराध्यका स्मरण आता था, वे वह समय घण्टा, मिनट सहित नोट कर लेते थे । सप्ताहमें वे दैनन्दिनीके पृष्ठ पलट कर देखते थे कि किस दिन उन्हें अधिक बार स्मरण आया ।

मैंने उनसे परिहास किया– 'कितनी देर स्मरण रहा, वह भी नोट किया जाना चाहिये था ।'

वे बहुत भोलेपनसे बोले– ''विस्मरणका क्षण तो स्मरण ही नहीं आता । वह तो अनजानमें ही चित्तको आक्रान्त कर लेता है । जीवनपर तो जैसे उसीका अधिकार है । मध्यमें स्मरण भी आता है, यही प्रभुकी बड़ी कृपा है ।''

''तुम्हारे नारायण भगवान्‌को ऐसी दैनन्दिनी नहीं रखनी पड़ेगी ।'' मैंने फिर परिसाह किया– ''वे तुम्हारी दैनन्दिनी देख लेंगे कि तुमने कब-कब उनका स्मरण किया है ।''

"उन करुणावरुणालयको इस अधमका स्मरण एक बार भी हो जायेगा तो इसका कल्याण हो जायेगा ।" वे बहुत भाव भीने स्वरमें बोले ।

मैंने उन्हें कहा— "वे सर्वज्ञ हैं । चाहें तो भी किसी जीवको विस्मृत नहीं कर सकते । मायाकी प्रेरणा केवल जीवको विस्मृति-विमुग्ध करती है ।"

एक दो ऐसी दैनन्दिनी भी देखनेको मिलीं जिनमें केवल अपनी त्रुटियों तथा स्खलनका उल्लेख था; किन्तु यह प्रवृत्ति मुझे अच्छी नहीं लगी । पतन और पाप भी कोई स्मरण रखने योग्य हैं । आप अपने शरीरकी ओर ही देखो तो खाल उतारनेपर इसमें कुछ सुशोभन, पवित्र मिलने वाला है ? जीवका अन्तःकरण भी तो सूक्ष्म-शरीर है । उसकी खाल उधेड़कर आप कौन-सा उज्ज्वल-रत्न पानेकी आशा कर सकते हो ।

अतः चिन्तन करने योग्य अपने दोष नहीं हैं । पैरमें गन्दगी लगी तो उसे हाथसे टटोलकर सूंघिये मत । पैरको झटपट धो डालिये । स्मरण करने योग्य केवल नन्दनन्दन है और उसका स्मरण राशि पाप-पर्वतको भस्मकर देनेवाला है । जिससे त्रिभुवन पावनी सुरसरि प्रगट हुई उन पाद-पद्मोंका स्मरण कीजिये ।

एक सज्जन एक बार अपनी महीने भरकी दैनन्दिनीका सार लिख कर ले आये और आग्रहपूर्वक सुनाने लगे । उसका प्रारम्भ ही था— ' 'मैं अत्यन्त पतित हूँ । मैंने इस दिन यह अपकर्म किया, इस दिन यह, इस दिन...... ।'

मैंने दो-तीन दिनका सुनकर ही उन्हें रोककर कहा— "आप तीस-इकतीस शीशेके जारके जार ले आइये । उनपर तारीखें चिपका दीजिये । उनमें तारीखके अनुसार मल-त्याग करके एक कमरेमें उनको सजा लीजिये । उन्हें देख लिया कीजिये कि मैंने अमुक दिन ऐसा मल किया । जी करे तो उनका ढक्कन उठाकर सूंघ लिया कीजिये; किन्तु कृपा करके किसी दूसरेको वह कमरा दिखलानेका उत्साह कभी मत कीजिये ।'

भगवान्‌ने मनुष्यको अपनी बुराई छिपाये रखनेकी ठीक प्रवृत्ति दी है । यह तो कुछ लोग हैं । जिन्हें दूसरोंके शौचालयमें झाँकनेका व्यसन होता है और वे वहाँकी दुर्गन्धिका वर्णन करके औरोंकी रुचि बिगाड़ते फिरते हैं ।

यह संसार अज्ञानका कार्य है । अज्ञान वश ही इसमें जीव भटक

रहे हैं । उनसे त्रुटियाँ तो होती ही रहती हैं । आप कूड़े-घरमें गन्दा कचरा ढूँढ़ने बैठेंगे तो लाभ ? वहाँ तो सभी गन्दा, दुर्गन्धित ढेर हैं । उसमें कहीं चमकती आलपीन, रत्नकण, इत्रकी शीशी भी मिल जाती है, यही विशेष है । चुनकर उठा लेने योग्य वही है । आपको यदि कूड़ादान ही उलटना-पलटना है तो आपके अन्वेषणकी दिशा इस प्रकारकी होनी चाहिये ।

मैं बात आपसे आपके अपने जीवनके आत्मालोचनकी कर रहा हूँ । यह आत्मालोचन करते हुए बार-बार यह देखिये कि आपके जीवनमें कन्हाईका स्मरण-चिन्तन, स्नेह-सौहार्द्र कितना बढ़ रहा है । कहीं घट तो नहीं रहा है । यदि घट रहा हो तो घटनेका कारण ढूँढ़कर उसे दूर करनेका प्रयत्न कीजिये; किन्तु उस कारणको ही इतनी महत्ता मत दीजिये कि उसीका चिन्तन होने लगे ।

आप अपने आत्मालोचनमें कन्हाईकी निकटता, इसके चिन्तनको प्रमुखता दीजिये । इसमें यह स्मरण रखिये कि जब मनुष्य अपने सद्गुण, भजन-जप-तप या प्रेमको देखने लगता है तो उसका पतन प्रारम्भ हो जाता है । ये कितने भी अधिक लगें, होते नगण्य प्रायः ही हैं ।

जब मनुष्य अपनेपर भगवत् कृपाका स्मरण करता है । भगवदनुग्रहको वार-बार देखता है तो उसपर दिव्य कृपाका प्रवाह अधिकाधिक उतरने लगता है । उसे उस कृपाकी उत्तरोत्तर अनुभूति वढ़ती जाती है ।

सबसे श्रेष्ठ दैनन्दिनी वह है जो कृष्ण-कृपा कव-कब कैसे होती रही, इसका विवरण बार-बार स्मरण कराती रहे ।

आप कन्हाईका स्मरण अधिकाधिक कर सको, इसको बढ़ाते रहो, इस प्रकारकी पर्यालोचना प्रतिदिन मन ही मन कर लिया करो, यह आपके लिए बहुत प्रेरणा-प्रद होगा ।

अपनेपर हुई भगवत्-कृपा सार्वजनिक-रूपसे प्रचारकी वस्तु नहीं हैं । अपनी सम्पत्ति प्रदर्शनकी वस्तु नहीं होती । वह प्रयत्न-पूर्वक छिपाये रखनेकी वस्तु है; किन्तु उसकी दैनिक सम्हाल भी बहुत आवश्यक है ।



१८. आपकी निद्रा

आपको निद्रा कैसे आती है और कैसी आती है ?

यह पूछनेका कारण है । अनेक लोगोंको निद्रा स्वाभाविक-रूपमें आती ही नहीं । वे रात्रि-शयनसे पहिले शीर्षासन जैसा कोई आसन, गरम पानीसे स्नान या इस प्रकारका कोई दूसरा उपचार न करें तो उन्हें नींद ही न आवे । कुछ लोगोंको इससे भी नींद नहीं आती । उन्हें नींदकी गोली प्रतिदिन लेनी पड़ती है । कुछ तो घोर-अनिद्रा रोगी होते हैं और अन्तमें पागल हो जाते हैं ।

कुछ लोगोंको नींद बुलानेके लिए कोई पुस्तक पढ़नी पड़ती है । वे लोग अच्छे हैं जिन्हें जप करते-करते नींद आ जाती है ।

कुछ लोगोंको नींद आकर भी नहीं आती । उन्हें स्वप्न दीखते रहते हैं या उचटती नींद आती है । गाढ़ निद्रा उन्हें आती ही नहीं ।

विस्तरपर पड़े और सो गये, ऐसा जिनके साथ होता है, वे स्वस्थ लोग हैं; किन्तु ऐसे लोग या जिन्हें नींद आती ही नहीं, दोनों निद्रा-जयी नहीं हैं । निद्राजयीका अर्थ है कि नींद उनके वशमें है । जब चाहा, सो गये और जितनी देरपर जागना चाहा, बिना किसीके उठाये या घड़ीमें अलार्म लगाये, उठ गये ।

अर्जुनका एक नाम गीतामें गुडाकेश आया है । गुडाकेशका अर्थ है निद्राजयी । दिवंगत महामना मालवीयजी ऐसे ही निद्राजयी थे । विस्तरपर लेटते ही उनके खुर्राटे चलने लगते थे और आवश्यकता होनेपर पाँच मिनट बाद ही वे जागकर कार्यमें लग जाते थे ।

आपको निद्रा कैसे और कितनी आती है, कैसी आती है ? यह पूछनेका मेरा ऐसा कोई तात्पर्य नहीं है कि मैं आपको प्रगाढ़-निद्रा लेनेका कोई उपाय बतलाऊँगा । मेरा पूछनेका तात्पर्य तो इतना ही है कि आप नाम-जप करते हुए कन्हाईका चिन्तन करते हुए सोते हो या नहीं ?

नींदमें भी आप बेसुध हो जाते हो या सावधान रहते हो, यह बात भी कम महत्त्वकी नहीं है ।

प्रगाढ़ निद्रा भी और सावधानी भी, यह बात आपको अटपटी लग सकती है; किन्तु माताएँ इसकी भली प्रकार अभ्यस्त होती हैं । विशेषकर उस अवस्थामें जब उनकी गोदमें शिशु रहता है ।

आपनें कभी पढ़ा या सुना है कि किसी माताके शरीरसे उसका नवजात शिशु निद्राकी बेसुध दशामें दब गया हो ?

ऐसी लड़कियाँ भी जो बहुत बेसुध सोया करती थीं, पहिनी सन्तान होते ही निद्रामें भी सावधान रहने लगती हैं । यह चमत्कार सन्तानके प्रति उनका वात्सल्य स्वतः कर देता है ।

ऐसे ही जब किसीका इकलौता लड़का बहुत बीमार होता है, पिता निद्रामें भी बालककी चेष्टाके प्रति बहुत सावधान रहता है ।

मैं स्वयं बीमार था । सिरमें कोई छोटी नस फटनेसे पूरे चेहरेमें कानों तक बायें भागका लकवा हो गया । ज्वर बना रहता था और सिरमें असह्य पीड़ा होती थी यदि तनिक भी हिलूँ, स्वयं उठने-बैठनेमें असमर्थ था ।

उन दिनोंमें संकीर्तन-भवन झूसी (प्रयाग) के संकीर्तन-पंडालके सामने एक चाहर-दीवारीसे घिरी आमोंकी बगीची थी । उसके अगले भागमें एक छोटा मन्दिर और दो कमरे थे । अब तो वह संकीर्तन-भवनके विस्तारमें लुप्त हो गयी । मैं उसीके एक कमरेमें ठहरा था ।

गर्मीके दिन थे । रातमें मेरी चारपायी खुलेमें थी । दो संस्कृतके विद्यार्थी जो संकीर्तन-भवनमें रहते थे, मेरी देखभाल करते थे ।

एक रात अचानक मेरे ऊपर एक दो बूंदें पड़ीं । मैं कुछ सोचूँ, इतनेमें एक विद्यार्थी आ गया और उसने मुझे तथा चारपायीको छायामें पहुँचायी । वह सामने संकीर्तन पण्डालमें सोया करता था और आप जानते हैं कि किशोरावस्थामें नींद कैसी आया करती है ।

मैंने उससे पूछा– "तुम सोये नहीं थे ? अब तो रातके एक बजे होंगे ।"

उसने कहा– "मैं कब का सो गया था; किन्तु खपरैल पर बूँद पड़नेका

शब्द होनेसे जाग गया । आप खुलेमें हैं अतः आपको उठाने दौड़ा आया ।''

संकीर्तन-पण्डाल खूब ऊँचा है । खपरैलोंसे छाया है । उसपर कठिनाईसे दोचार बूँदें पड़ी होंगी; किन्तु उस छात्रको कितनी सतर्क-सावधान-नींद आयी होगी कि उसकी निद्रा उन प्रथम बूँदोंके शब्दसे ही टूट गयी ।

आपसे यह चर्चा अकारण नहीं कर रहा हूँ । आप यदि कन्हाईसे स्नेह करते हैं, इस भोले गोपकुमारको अपना मानते हैं तो आपको ऐसी सावधान निद्राकी बहुत अधिक आवश्यकता है ।

जो श्रीव्रजराज-तनयसे कोई सम्बन्ध नहीं रखते, संसारकी ही उधेड़बुनमें जकड़े हैं, वे तो जागते हुए भी घोर अज्ञान निद्रामें सो रहे हैं । उनके लिए यह वर्णन नहीं है । वे सावधान भी सोयेंगे तो उनकी सावधानी किसी सांसारिक वस्तु, व्यक्ति या स्थितिके ही प्रति होगी ।

कन्हाई बालक है । भोला है । यह बाबाके समीप तो पृथक शैय्यापर सोने लगा है; किन्तु बाबा इसे कभी किनारे नहीं सोने देते । इसकी छोटी शैय्या दाऊदादा और भद्रसेनकी शैय्याओंके मध्य लगती है । बाबा अपनी शैय्या इन तीनों बालकोंके सिरहानेकी ओर लगाया करते हैं ।

इतनेपर भी कन्हाई सोते-सोते नींदमें उठकर चल देता है और कभी बाबाकी, दाऊकी या भद्रकी शैय्यापर जा लेटता है अथवा भीतर मैयाकी गोदमें जा पहुँचता है । इसे किसीसे लिपटकर सोनेका अभ्यास है ।

प्रातः बाबा उठते हैं तो यही देखते हैं कि उनका लाल कहाँ है । यह अपनी शैय्यापर तो कदाचित् ही मिलता है, बाबाकी, दाऊकी, भद्रकी शैय्यापर भी न हो तो भीतर भवनमें बाबा कहलाते हैं और गोष्ठमें ढूँढ़ते हैं । यह किसी गाय या बछड़ेसे भी लिपटा सोया मिल सकता है ।

अनेक बार कोई गोप उस ब्रह्म-मुहूर्तमें ही इसे सोता ही गोदमें उठाये आ जाता है या स्वयं जागकर मुस्कराता जम्हाई लेता आता है और तब कहता है– ''बाबा ! मुझे अमुक गोप या गोपी रातमें उठा ले गयी थी ? मैं तो जागते ही उसके घरसे भाग आया ।''

यह इस प्रकार कभी आपके समीप भी तो रातमें आकर चुपचाप सो जा सकता है । आप गृहस्थ भी हों तो इसे क्या अन्तर पड़ता है । यह दम्पत्तिके

मध्यमें चुपचाप जाकर लेट नहीं जायेगा, इसका कोई व्रत लिया है इसने ? फिर यह सदा जागते हुए सावधानीसे तो कहीं जाकर सोता नहीं । नींदमें उठकर चल देता है और नींदमें ही किसी की भी शैय्यापर जा सोता है । इसे कहाँ पता होता है कि यह किसकी शैय्यापर सो रहा है ।

यह भी नियम नहीं है कि वहाँ रात भर सोता ही रहेगा । नींद खुल जाय तब तो अवश्य वहाँसे बाबाके पास आ जायेगा, किन्तु वहाँसे भी अधूरी नींदमें ही पहिलेकी भाँति उठकर चल दे सकता है और किसी दूसरेकी शैय्यापर पहुँच जा सकता है ।

कन्हाई अतिशय सुकुमार है । यह आपके हाथका भार भी सहने योग्य नहीं है । अतः आपको ही सावधानी-पूर्वक सोना है कि आप कहीं नींदमें ऐसी करवट न लें या ऐसे हाथ-पैर न डालें जिससे इसका कोई अंग दब जाये ।

यह कब किसकी शैय्यापर रातमें जा पहुँचेगा, इसका कोई नियम तो है नहीं । शीतकालमें तो प्रायः बाबा रातमें बार-बार उठकर इसे सम्हालते रहते हैं । यह अपनी ओढ़नेकी कमली पैर मारकर चाहे जब फेंक देता है और शीत लगनेपर बाबा या भाइयोंमें किसीके पास जाकर उससे चिपक रहता है ।

"दादा ! रातमें, कमली तो पता नहीं कैसे भाग गयी । मैं तेरे समीप आकर सो गया ।" स्वयं सबेरे कहेगा-- "कामदाको या गौरव (बछड़े) को शीत लगती है तो चुपचाप मेरी कमली ही खींच ले जाते हैं ।"

"तेरी कमली तो तेरी शैय्यासे नीचे पैरोंकी ओर पड़ी है ।" भद्र बीचमें कह देता है ।

"तब तूने खींचकर ओढ़ी होगी । अब वहाँ डाल दी है ।" यह भद्रसे झगड़ने न लगे, इसलिए बाबा या दाऊदादा इसे तत्काल कुछ और बात कहने लगेंगे या स्नान करने चलनेको झटपट प्रस्तुत करेंगे । अन्ततः सवेरे-सवेरे तो इसे किसीसे झगड़ने नहीं दिया जा सकता ।

कन्हाईको रातमें सोतेमें कहीं जाकर सो जानेका ही अभ्यास नहीं है । इसकी नींद टूट जाय तो रातको ही खेलनेकी धुन भी चढ़ सकती है । इसे

पता ही नहीं लगता कि रात्रि कितनी शेष है । यह तो आधी रातको भी उठ सकता है ।

खेलनेके लिए साथी चाहिये; किन्तु यह जानता है कि दाऊदादा या भद्र रातमें खेलने चलनेमें रुचि नहीं लेते । इनमें किसीको जगाओ तो ये हाथ पकड़कर श्यामको भी समीप सुला लेते हैं । तब इसे कहीं जानें ही नहीं देते । अतः रातको नींद टूटे तो अकेले ही उठकर चल देगा । रातमें भला खेलेगा तो क्या, कोई ऊधम करेगा ।

किसीके भी घर पहुँच जायेगा । गोपोंके घरके द्वार कदाचित् ही बन्द होते हैं । इसलिए भी गोप-गोपियाँ द्वार बन्द नहीं करते क्योंकि सम्भावना बनी रहती है कि नन्दनन्दन कभी उनके घर नींदमें अथवा जागते कोई ऊधम करने या माखन खाने आ सकते हैं ।

माखन-दही खाना हो तो कदाचित् ही अकेले खायेगा । जिस घर पहुँचेगा उसी घरके बालकको जगा लेगा । उसे भेजकर समीपके घरके भी सखाओंको बुलवा लेगा । कभी-कभी तो सायंकाल ही सखाओंके साथ रातमें किसी विशेष घरपर ऐसी कृपा करनेकी मन्त्रणा हो जाती है ।

अनेक वार दाऊदादा और भद्रको भी यह ऐसे अभियानके लिए अनुकूल बना लेता है । तब उन्हें भी साथ ले लेता है ।

दही-माखन खानेका मन न हो और रातमें नींद टूट जाये तो अकेले चुपचाप किसी गोप-गृहमें पहुँचकर किसी दम्पत्तिकी चोटी परस्पंर बाँध देगा या किसी गोपीकी चोटी शैय्यामें बाँध देगा किसीके मुखमें दही या नवनीत लगा देगा ।

लेकिन इसे शीघ्र पता लग जाता है कि रात बहुत शेष है । अतः ऐसे समय देर तक कहीं नहीं रुकता । एक या दो घरोंमें छोटे-मोटे ऊधम करके झटपट आकर अपनी शैय्या पर लेट जाता है ।

आपसे इसका कोई स्नेह नहीं है तो आप निश्चिंत रह सकते हैं, यह व्रजेन्द्रनन्दन पराये घरोंकी ओर झाँकता भी नहीं । यह तो उनके ही घर कभी कदाचित् पहुँचता है जो इसे अपना मानते हैं । इसकी सब छेड़-छाड़ अपनों तक ही सीमित रहती है ।

आप इसके अपने हैं तो निद्रामें करवट बदलते समय अपनी चोटी टटोल लिया करें, यदि आपके चोटी हो । आज-कल तो अधिकांश पुरुषोंने चोटी रखना ही छोड़ दिया है । अतः यह सावधानी अधिक नारियोंको ही रखनी है । यह किसी दिन किसीकी चोटी चुपके से शैय्यामें बाँध आ सकता है या उसकी चोटीमें कोई बड़ी रस्सी बाँध दे सकता है ।

''कोई तेरी चोटी बाँध दे तो ?'' एक गोपीने इसे एक बार धमकाया । वैसे वह जानती थी कि कोई या स्वयं वह ऐसा कभी कर नहीं सकेगी । सुकुमार कन्हाकी अलकें खिंच उठें, यह कल्पना भी असह्य है ।

'तू बाँधेगी ? किसके बाँधेगी ?' कन्हाई कहाँ हारना या झेंपना जानता है । इसने ढिठाईसे पूछा ।

'अपनी चोटीसे बाँध दूँगी ।' गोपीने कहा ।

'ले बाँध !' कन्हाईने अपनी चोटी हाथसे उठाकर दिखायी और उसके समीप जाकर खड़ा होकर बोला– 'मेरी चोटी तो छोटी है । तेरी तो खूब लम्बी है । तू अपनी चोटी मेरी चोटीमें बाँधेगी तो मेरे चारों ओर घूमती रहेगी ।'

इसे ऐसी बातें बनाना बहुत आता है; किन्तु अपनी चोटी यह सचमुच कहीं बाँध दे सकता है, अतः नींदमें आपको सावधान तो रहना चाहिये ।

मैंने सुना है कि एक कोई पिछले जयपुर नरेश रातमें सोते-सोते चौंक कर उठे । उन्हें लगा कि उनके पूरे शरीरमें चींटियाँ काट रही हैं । बत्ती जलाकर देखा गया, बिस्तर झाड़ा गया; किन्तु कहीं न कोई चींटी थी, न मच्छर या और कोई कीड़ा । सोनेकी चेष्टा की; किन्तु फिर वैसा ही अनुभव हुआ ।

वे भक्त थे । उनके आराध्य ठाकुरजी थे और वे प्रतिदिन स्वयं भी पूजन करते थे । रातमें ही स्वयं स्नान किया और पुजारीको जगवाया । उसने भी स्नान किया । नरेशकी आज्ञासे मन्दिर खोला गया । दिनमें थालभर लड्डूओंका भोग लगा था । उनमेंसे एक लड्डू लुढ़ककर ठाकुरजीके चरणोंके पास वस्त्रोंके नीचे चला गया था । उस लड्डूपर लाल चींटियाँ चढ़ीं तो श्रीहरिविग्रहपर भी चढ़ गयी थीं ।

स्वप्नमें ऐसे अनुभव अनेक लोगोंको हुए और होते हैं । अनेकोंको स्वप्नमें दर्शन होता है; किन्तु स्वप्न तो आपके वशमें हैं नहीं । जैसे जागृतमें

दर्शन देना, न देना दर्शन देने वालेकी इच्छापर निर्भर है, वैसे ही स्वप्नमें दर्शन देना भी उसीकी इच्छा पर निर्भर है । अतः बात ऐसी की जानी चाहिये जो अपने वश में हो ।

एक महात्माने मुझसे कहा था– "यदि तुम भगवन्नाम लेते-लेतें सो जाओ और ऐसा अभ्यास कर लो कि नींद टूटते ही मुखसे भगवन्नाम निकले तो तुम्हारी नींदका पूरा समय जप करनेका माना जायेगा ।'

यह बात अपने वशमें है । थोड़े अभ्याससे अपनायी जा सकती है । श्रीकृष्णके नाम श्रीकृष्ण स्वरूप ही हैं । अतः पूरा निद्राका समय आप नामकी सन्निधिमें व्यतीत कर सकते हैं ।

उन महापुरुषके वचनोंमें थोड़ा परिवर्तन किया जा सकता है । वह यह कि यदि आप सोते समय श्रीकृष्णका चिन्तन करते सोयें और नींद टूटते ही कृष्ण-चिन्तन करने लगें तो पूरे निद्राके समय श्रीकृष्ण-चिन्तनमें ही लगे रहे ।

मैंने एक व्यक्तिको कहा– "जब तुम सोने लगो तो ऐसा चिन्तन करो कि श्रीरघुनाथजी बैठे हैं और तुम उनकी गोदमें सिर रखकर सो गये । जागते समय तुमको यह स्मरण आना चाहिये कि तुम सिर तकिये परसे नहीं; उनकी गोदसे उठा रहे हो । तब रात भर तुम्हारा सिर उनकी गोदमें ही तो रहा ।"

उन सज्जनके नेत्र अश्रुपूरित हो गये । वे बोले– "आपकी बात तो ठीक है; किन्तु उन संकोचीनाथको इस प्रकार क्या रात भर बैठाये रखना उचित है ।"

मुझे उनकी भावनाका महत्त्व स्वीकार ही करना था; किन्तु कन्हाई तो बालक है । आप सोते समय यह चिन्तन करते हुए सो जायें कि यह आपके अंकसे चिपककर सो गया है । लेकिन तब करवट लेते समय भी इसका स्मरण आना चाहिये । नींद टूटनेपर स्मरण आना चाहिये कि यह आपकी गोदसे अभी-अभी उठकर भाग गया है ।

मुझे इस विषयमें भगवान् शिवका चिन्तन सबसे उपयुक्त लगता है । वे आशुतोष सिद्धासनसे ध्यान मग्न बैठे हैं । मेरे जैसा कोई बालक उनकी गोदमें सिर रखकर सो जाये तो उन विश्वनाथको कोई विक्षेप नहीं होता ।

जागते समय स्मरण आना चाहिये कि सिर उनकी गोदसे उठाया जारहा है।

आप निश्चिन्त रह सकते हैं कि बाबाके आभूषण बने सर्प आपको सहलायेंगे भी नहीं और उनके गण आपको डरानेका साहस नहीं करेंगे ।

इस धारणासे शयनकी एक सिद्धि भी है, यदि धारणा दृढ़ हो और रात्रिमें निद्रा टूटनेपर भी बनी रहे । आप यदि करवट लेते समय सावधान हो गये हों तो स्मरण आना चाहिये कि आपका सिर भगवान नीलकण्ठकी गोदमें है । रातमें किसी भी कारणसे जागें और उठें तो सिर वहाँसे उठानेका स्मरण आवे । फिर सोना हो तो सिर वहीं रखा गया है, यह स्मरण कर लिया जाया करे ।

सिद्धि यह है कि इस धारणासे शयन करने वालेकी मृत्यु रातमें सोते समय नहीं हो सकती । मृत्युञ्जय महाकालकी गोदमें सिर रखकर सोने वाले शिशुको स्पर्श करनेका साहस मृत्यु, काल या यमराज कभी नहीं कर सकते ।

लेकिन यह धारणा गृहस्थके लिए बाधक है ? उन कामारिकी गोदमें सिर रखकर सोनेपर कामवासना या तो उठेगी नहीं अथवा यह धारणा भंग हो जायेगी तब उठेगी । काम-चिन्तन या काम-सेवन कामारिकी गोदमें सिर रखकर चले, यह सम्भव नहीं है । मैं आपको सावधान कर दूँ कि यदि आप इस धारणाके साथ यह अनुचित चेष्टा या चिन्तन करेंगे तो आपकी काम-सेवन शक्ति नष्ट हो जा सकती है।

आप स्वयं निर्णय करें कि आप अपनी निद्राको कैसे तमोगुणमें ही डूबे रहनेसे बचाकर दिव्य बनावेंगे; किन्तु निद्राके कई घंटे तमोगुणमें निमग्नताके ही होते हैं । जीवनका यह प्रतिदिन नष्ट होने वाला समय दिव्य बना लिया जा सकता है । आप इस समयको भगवन्नाममय या भगवत्-सान्निध्यमय बना लेंगे तो आपका जीवन दिव्य हो जायेगा ।



१९. आपकी वसीयत

आपके चौंकनेका कोई कारण नहीं है । मैं आपसे अपनी चल-अचल सम्पत्ति अपने नाम वसीयत करनेको नहीं कहने जा रहा हूँ ।

वे तो बहुत भाग्यशाली होंगे जो जीवनमें कन्हाईको भी अपने स्नेह-पात्रोंमें मानते रहे होंगे और इस नन्दनन्दनको भी अपना उत्तराधिकारी मानते होंगे ।

सुना तो है कि श्रीवल्लभाचार्यके कुलके गोस्वामीजीमें परम्परा चली आरही है श्रीनाथजीको अपने कुलमें गिनने, जीवनके सब विशेष अवसरोंपर उन्हें अपने अन्य पुत्रोंके बराबर भाग देनेकी; किन्तु मुझे पता नहीं है कि वे वसीयत भी करते हैं या नहीं और उनका शरीर न रहनेपर उनकी सम्पत्तिमें श्रीनाथजीका भाग पृथक होता है या नहीं ।

आप अपनी सम्पत्तिकी वसीयत अभी करदें, ऐसा भी कुछ आग्रह मेरा नहीं है । मेरा आग्रह तो आपके शरीर तथा अन्तःकरणको लेकर है और आप जानते हैं कि अन्तःकरण जब तक अपना न हो जाये, किसीको भी दिया नहीं जा सकता । अन्तःकरण-मन अपने वशमें हो जाये तो सोचना शेष नहीं रहता कि वह किसे दिया जाये । वह सदासे जिसका है उसका हुए बिना वशमें ही नहीं होता ।

अब बच रहता है केवल आपका शरीर; किन्तु आपने कभी सोचा है कि शरीर आपका है या नहीं ? पहिले तो प्रश्न यही है कि कौन-सा शरीर ? जो नन्हा शरीर माँके गर्भसे निकला था वह या जो आपके विवाहके समय तरुण सशक्त था वह अथवा अब जो जरा-जर्जर जीर्ण-शीर्ण है वह ?

शरीर परिवर्तनशील है । शरीर-वैज्ञानिक कहते हैं कि इसका कण-कण तीन वर्षमें या साढ़े तीन वर्षमें परिवर्तित हो जाता है ।

आपके शरीरको आप स्वयं अपना मानते हो । आपके माता-पिता, भाई-पुत्र, पत्नी तथा अनेक सम्बन्धी एवं मित्र अपना मानते हैं । प्रशासन अपना मानता है । आपने किसीसे ऋण लिया हो तो महाजन, नौकरी करते

हों तो स्वामी और आपकी जाति, समाज तथा राजनैतिक दलके लोग अपना मानते हैं । आप उन्हें भले न मानें; किन्तु देवता, धर्म, यमराज अपना मानते हैं ।

आप क्षमा करें– कुत्ते, शृगाल, गीध, कीड़े ही इसे अपना नहीं मानते, मच्छर, खटमल आदि और अग्निदेव भी अपना मानते हैं ।

ऐसी सार्वजनिक वस्तु जिसपर बहुत अधिक लोग अपना स्वत्व मानते हैं, उसके सम्बन्धकी वसीयत बहुत विवादकी वस्तु है, अतः ऐसी वसीयतकी बात भी मैं नहीं करता ।

वैसे आजकल अनेक लोग मरनेसे पहले वसीयत करते तो हैं कि उनके नेत्र, गुर्दे किसी ऐसेको जिसे इनकी आवश्यकता हो, दे दिये जायें ।

राजस्थानमें (जोधपुरसे कुछ मील दूर) एक सती माँ हैं । वे न कुछ पीती हैं, न खाती हैं । मुखमें ही कुछ नहीं डालतीं । उन्हें ऐसे रहते लगभग साठ वर्ष हो चुके । मैं आजसे २० वर्ष पहिले उनके सम्बन्धमें जाँचकी बात लेकर आयुर्विज्ञान संस्थान दिल्ली गया तो वहाँ एक अमेरिकन विशेषज्ञ मेरे पीछे ही पड़ गये कि 'मैं सती माँ से वसीयत करा दूँ कि मरनेके बाद उनका शरीर उन्हें दे दिया जाय ।' वे अच्छी बड़ी रकम देनेकी बात कर रहे थे । मैंने उनसे कह दिया– 'उनके भक्त उनका शरीर चीरने-फाड़नेको किसी मूल्य पर नहीं देंगे ।'

यह चर्चा ही चलाने योग्य मुझे नहीं लगी । अतः मैं आपसे भी आपके मृत शरीरकी वसीयत करनेको नहीं कहूँगा । वैसे आप जानते हो कि शव डॉक्टरी पढ़ने वालोंके काममें आते हैं । डाक्टरीके विद्यालयोंको उनकी आवश्यकता रहती है ।

आप यदि हिन्दू हैं और सन्यासी नहीं हैं अथवा हो जानेका विचार नहीं रखते तो मरणोपरान्त आपका शव-दाह होगा । मैं उस शवकी एक चुटकी भस्मकी वसीयत करनेकी बात कर रहा हूँ । आपके उत्तराधिकारी चाहे जहाँ भस्म बहावें या 'फूल' डालें इससे कोई प्रभाव नहीं पड़ने वाला है ।

आप आस्तिक हैं तो आज ही अथवा जब आपको सुविधा मिले, किसी शिव-मन्दिरमें चले जाइये और अपनी चिता-भस्मकी वसीयत भगवान्

भूतनाथको निवेदित कर आइये ।

आप जानते हैं कि भगवान् गंगाधर शरीरमें चिता-भस्म लगाया करते हैं । देवता बिना अर्पित किये कोई पदार्थ स्वयं नहीं लिया करते । अर्पित करनेपर भी स्वीकार कर लें तो उनकी महती कृपा । लेकिन जिसकी चिता जल चुकी होगी, वह तो भस्मार्पणकी स्थितिमें होगा नहीं । उसके उत्तराधिकारी चिताग्नि शीतल होनेपर चिता-भस्म चाहें तो श्मशानके शिवलिंग पर आर्पित कर सकते हैं; किन्तु ऐसा करनेकी कोई प्रथा है नहीं । ऐसा करनेका निषेध भी नहीं है, यह बात तो ठीक; किन्तु किसी प्रसिद्ध मन्दिरके शिवलिंग पर चिता-भस्म वहाँके पुजारी अधिकारी चढ़ानेकी अनुमति देंगे ?

आप स्वयं अपनी चिता-भस्मकी वसीयत करनेकी स्थितिमें हैं । आप मन्दिरमें भगवान् शंकरसे प्रार्थना कर सकते हैं– "प्रभो ! आप अपने श्रीअंगपर चिता-भस्म धारण करते ही हैं । मेरी चिता जब जलेगी तब मैं उसकी भस्म आपको अर्पण करनेकी स्थितिमें नहीं होऊँगा । इतनी अनुकम्पा आपही करना कि मेरी चिताकी भस्म आप एक चुटकी, एक मुट्ठी या जितनी आप उचित समझें अपने श्रीअंगपर धारण कर लें ।"

ऐसा नहीं है कि आप इस प्रार्थनाका महत्त्व न समझते हों; किन्तु यह प्रार्थना करनेका आपको कभी स्मरण आया या नहीं; कह नहीं सकता । मैं तो केवल आपको स्मरण दिला रहा हूँ ।

आप शिव-भक्त नहीं भी हो सकते हैं; किन्तु आप कट्टर वैष्णव भी हों तो इस वसीयतसे आपकी पारलौकिक गति अवरुद्ध नहीं होगी । आप श्रीनारायण, श्रीराम या श्रीकृष्णके भक्त हैं तो भी अपने आराध्यके धाम आपका स्थूल देह तो जाना नहीं और इस स्थूल देहकी भस्म आपके आराध्यके उपयोगकी है नहीं । आपने जिस मानव-शरीरसे स्मरण-भजन किया, जिसके माध्यमसे आपको अपने आराध्यकी सन्निधि मिल सकती है, उस देहको भी सार्थक करनेकी बात आपके मनमें आनी चाहिये ।

अतः यह वसीयत, यह प्रार्थना पापी-पुण्यात्मा, शैव-वैष्णव सबके लिए परम मंगलमयी है ।

॥ शुभम् ॥


कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्
श्रीकृष्ण-जन्मस्थान सेवा-संस्थान